अध्याय-3
संगीत रत्नाकर का परिचय

संगीत एक प्रकार से नाद की भाषा है, नाद को ब्रह्मस्वरूप माना गया है। संगीत शास्त्रों में नाद को संगीत का प्राण माना जाता है।[(1)]

चैतन्य सर्वभूतानां विवृतं जगदात्मना।
नादब्रह्म तदानन्दमद्वितीयमुपास्महे।।

सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही संपूर्ण नाद की उत्पत्ति मानी गई है। मनुष्य ने अपनी सूझ–बूझ से इन विभिन्न नादात्मक ध्वनियों को अलग–अलग कलात्मक ढंग से संजोया एवं प्रकाशित किया। नियम समय के बाद मानव को इस बात का ज्ञान हुआ कि इस कथित एवं इस संगीत की धारा का प्रयोजन क्या है ? इन सभी विचारों के व्यवहार ज्ञान के लिए मानव के मन–मस्तिष्क ने उसे इन विचारों की और प्रेरणा दी होगी तथा यहीं मन का चिंतन ग्रन्थों की प्रथा एवं प्रणाली का आधार स्तंभ बना होगा। ग्रन्थ का अर्थ मात्र आनंदित एवं निर्जीव सिद्धांतों को लिखने मात्र से नहीं है, बल्कि कला की लगातार बढ़ते तत्व के मनन से है। हम देखते है, कि जिस तरह से सर्वप्रथम भाषा का उद्‌भव हुआ, उसके पश्चात व्याकरण बनी, उसी तरह से सर्वप्रथम संगीत की उत्पत्ति हुई, तत्पश्चात संगीत शास्त्र ग्रन्थों की रचना हमारे संगीत आचार्यों के चिंतन तथा कड़ी तपस्या का फल है।

इस स्वाभाविक संगीत नियमों को अनुकूल करने हेतु, इसके कुछ विधिवत प्रमाणों को ग्रन्थों का रूप दिया गया, जिससे यह संगीत सम्मानित तथा क्रमागत भी बना रहे। ग्रन्थों के माध्यम से कृत संगीत से स्थिरता का आदान–प्रदान किया गया एवं गहनतापूर्वक अध्यापन व अध्ययन के लिए संगीत के प्रति पूर्ण करने वाले नियमों को लिखित रूप में संग्रहित किया गया। हमारे पूर्वजों व आर्यों द्वारा संगीत ग्रन्थों की रचना अपने समय के अनुकूल कला अवयवों एवं स्वरूपों को निर्धारित रूप से उपस्थित करने तथा उसका पारस्परिक संबंध प्रतिष्ठित करने के अभिप्राय से रचे जाते थे। अतः इस तरह से ग्रन्थों का महत्व ऐतिहासिक तो है, ही साथ ही उपयोग के पहलू से भी उनकी जरूरत प्रत्यक्ष ज्ञात होती है,

---

(1) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड–1/प्रकरण–3/श्लोक–1

क्योंकि वर्तमान में तथा भाविष्य में आने वाली पीढ़ियों के लिए, उनका मार्गदर्शन करने हेतु तथा अपने पूर्व आचार्य के नियम दृष्टिगत करने के लिए यह ग्रन्थ लाभ युक्त प्रमाणित होते है। आज के विद्वान भी इन सभी ग्रन्थों का अनुगमन करते है, जिससे उनको संगीत के कई ऐसे तथ्यों का मार्गदर्शन प्राप्त होता है, जो वर्तमान समय के संगीत को सुव्यवस्थित एवं स्थिरता लाने के लिए अवश्यक है। हमारे प्राचीन ग्रन्थ अत्यधिक लाभयुक्त तथा प्रभावित सिद्ध हो रहे है। भारतीय संगीत में ग्रन्थों की रचना की रीति आदि–काल से ही प्रचार में है, क्योंकि संगीत में क्रियात्मक पक्ष के साथ–साथ संगीत का शास्त्रीय पक्ष भी अति व्यवस्थित एवं सुरक्षित होता गया। देखा जाए तो आज के संगीत के ऐतिहासिक ग्रन्थ क्रमबद्ध रूप से प्राप्त नहीं है, परन्तु फिर भी संगीत की परंपरा के तथ्य हमें वैदिक युग में स्पष्ट देखने को मिलते है। भारतीय संगीत तथा भारतीय परंपरा की जानकारी सर्वप्रथम हमें वैदिक युग से ही उपलब्ध होती है। भारतीय संगीत का शास्त्रीय स्वरूप हमें सामवेद में प्राप्त होता है, जो मूलतः संगीत का वेद माना जाता है।

शास्त्रीय संगीत के रूप में सामगान का प्रयोग यज्ञों में एवं अन्य कर्मों में भी देखने को मिलता है। इस संगीत की प्रविधि तथा निश्चित मत सबसे पहले ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त होते है, उसके पश्चात् उपनिषद, प्रतिशाखा आदि ऐसे वेदांग साहित्य में उपलब्ध होते है। वैदिक संगीत अर्थात वैदिक काल के बाद गंधर्व संगीत का प्रचार हुआ, जो उस समय लोक–संगीत के रूप में माना जाता है। यह संगीत शास्त्रीय संगीत के रूप में प्रसिद्ध हुआ, जिनका वर्णन हमें रामायण, महाभारत जैसे महाकाव्यों में इनके तत्व प्राप्त होते है, परन्तु इन्हें शास्त्रीय संगीत के ग्रन्थ नहीं कह सकते। हमारे प्राचीन भारतीय संगीत को नाट्य का अंग माना जाता है, अतः लोक संगीत के प्रमाणों का सुव्यवस्थित तथा सर्वप्रथम ग्रन्थ नाट्यशास्त्र को माना जाता है तथा इस ग्रन्थ को सामवेद का उपवेद भी कहा जाता है व इसे पंचम वेद भी कहा जाता है।

नाट्यशास्त्र के बाद आदि ग्रन्थकारों ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया, जिसमें नंदीकेश्वर कारिका, तंबुरू नाटक, कोहलीयम दत्तिलम आदि ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। आचार्य अभिनव गुप्त द्वारा 10वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में नाट्यशास्त्र की अमर टीका अभिनव भारती जो एक प्रसिद्ध रचना है। इसके बाद 11वीं शताब्दी में श्री नान्यदेव जी द्वारा संगीत ग्रन्थों

की परिपाटी में भरत भाष्य एवं सरस्वती हृदयालंकार जैसे ग्रन्थों की रचना की। इस ग्रन्थ में प्राचीन संगीत तथा समकालीन संगीत का वर्णन विस्तारपूर्वक दिया गया है।[(2)] इसी नियमबद्धता से भरत मुनि के नाट्यशास्त्र के बाद कई ग्रन्थों की रचना हुई और जिन भी ग्रन्थों की रचना हुई, उनमें संगीत को नाट्य से अधिक महत्वता दी गई, परन्तु यह दोनों एक दूसरे के परस्पर संबंधी है तथा एक दूसरे के सहायक है। पं० शारंगदेव जी द्वारा रचित ग्रन्थ संगीत रत्नाकर एक अंतिम ग्रन्थ है, जिसमें संगीत से जुड़े हर तत्व की जानकारी या वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है, किन्तु संगीत रत्नाकर के समय से पूर्व 11वीं तथा 12वीं शताब्दी में विदेशियों के आक्रमण तथा उनका भारत में आगमन होने से एक नए युग का आरंभ हुआ, जो मध्ययुग कहा जाता है, विदेशियों (मुसलमानों) के आक्रमणों के पश्चात् तथा भारत पर उनका प्रभुत्व होने से भारतीय संगीत पर उसका प्रभाव पड़ा और भारतीय संगीत दो शैलियों में विभक्त हो गया, हिंदुस्तानी संगीत तथा कर्नाटकी संगीत।

संगीत रत्नाकर की रचना सन् 1210 ई० से सन् 1247 ई० के मध्य होना माना जाता है। यह एक ऐसा प्रमाणिक ग्रन्थ है, जिसके अन्तर्गत संगीत के सभी पहलुओं का वर्णन विस्तारपूर्वक दिया गया है तथा ओमकारनाथ ठाकुर के द्वारा कहा गया है कि संगीत रत्नाकर में संगीत के समस्त विषयों को विस्तारपूर्वक बताया गया है तथा यह संगीत ग्रन्थ संगीत विषय निरूपण के अवलोकन से यथार्थ भारतीय संगीत का शक्ल स्वरूप है। संगीत ग्रन्थों में संगीत रत्नाकर नितान्त गणमान्य है। अतः संगीत ग्रन्थ प्रणाली में इस ग्रन्थ का एक विशेष स्थान है।

3.1 संगीत रत्नाकर का स्थान तथा रचनाकाल

पं० शारंगदेव जी द्वारा रचित ग्रन्थ संगीत रत्नाकर संगीत के रत्नों की आकृति है। पं० शारंगदेव जी ने इस ग्रन्थ की रचना ''नाट्यशास्त्र'' तथा ''बृहद्देशी'' को नींव बनाकर तथा ''मनसोल्लास'' तक के सभी प्राचीन ग्रन्थों तथा उनके तथ्यों का अतः संगीत का गहनता से पठन करके तथा अपने काल पूर्व के सभी शास्त्रकारों के मतों को इस ग्रन्थ अर्थात् ''संगीत

---

(2) दीक्षित सुरेन्द्र नाथ/भरत और भारतीय नाट्यकला/पृ०–152

रत्नाकर'' में विस्तृत विवेचन किया है। संगीत रत्नाकर के रचनाकाल तक भरत द्वारा वर्णित जातियाँ अस्तित्व में नहीं थी और ''बृहद्देशी'' के काल के समय देशी रागों स्थान पर अन्य नए रागों का जन्म हो गया था, जो अधुना–प्रसिद्ध राग कहे गए। पं० शारंगदेव जी ने इन अधुना–प्रसिद्ध रागों को ''बृहदेशी'' में वर्णित प्राचीन रागों तथा प्राचीन रागों को नाट्यशास्त्र की जातियों से उनके संबंध जोड़ने का प्रयास किया है, जिसके फलस्वरूप पं० शारंगदेव जी ने संगीत रत्नाकर में एक नए राग वर्गीकरण का वर्णन किया, जिससे इस ग्रन्थ के मौलिक गुण स्पष्ट व्याख्यित होते है। गायन, वादन तथा नृत्य संगीत के इन तीनों विषयों का विस्तृत विवेचन करने वाला यह ग्रन्थ पूर्ण प्रभुत्व रखता है तथा सभी संगीत शास्त्रीय ग्रन्थों में महत्वपूर्ण माना जाता है। इस ग्रन्थ के अंतर्गत पं० शारंगदेव जी ने अपने से पहले के सांगीतिक आचार्यों तथा अपने समकालीन शास्त्रियों के मतों का वर्णन किया है, जिससे इस बात की पुष्टि होती है, कि पं० शारंगदेव जी द्वारा रचित ग्रन्थ संगीत रत्नाकर भारतीय संगीत की प्रणाली अर्थात प्रथा का निर्वाह करने वाला एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। वर्तमान समय में संगीत रत्नाकर से हर एक संगीत विद्वान एवं विद्यार्थी परिचित है, चाहे उत्तर भारतीय संगीत के हो या दक्षिण भारतीय संगीत के, क्योंकि संगीत रत्नाकर ग्रन्थ संपूर्ण भारतीय संगीत का आधार ग्रन्थ है। संगीत रत्नाकर ग्रन्थ का रचनाकाल 13वीं शताब्दी माना जाता है, उस काल में विदेशी आक्रमणों से संगीत पर भी प्रभाव पड़ा तथा मुस्लिम संगीत का प्रभाव भारतीय संगीत पर दिखना आरंभ हो गया, उस समय दक्षिण में देवगिरी के राज्य में आश्रित थे, उन्होंने भारतीय संगीत को बिखरता देखा, तो उन्होंने इस भारतीय संगीत विषय की समस्त अस्त–व्यस्त हुई सामग्री को बहुत अच्छे से विद्वतापूर्वक नियम से संजोया और पं० शारंगदेव जी ने भविष्य की संगीत पीढ़ी हेतु, संगीत रत्नाकर के रूप में एक अनमोल तथा बहुत ही महत्वपूर्ण उपहार के रूप में भविष्य की पीढ़ी को भेंट किया।

3.2 संगीत रत्नाकर ग्रन्थ की महत्व

संगीत के नितांत दीर्घ, विस्तृत विवेचन तथा विषय के स्पष्ट प्रमाणों द्वारा सिद्ध होने से संगीत के शास्त्र ग्रन्थों में संगीत रत्नाकर का अपूर्व अनुपम स्थान है। संगीत रत्नाकर ग्रन्थ के प्रकाशित संस्करणों से इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है, कि इस ग्रन्थ ने

अपने बाद के शास्त्रकारों को अत्यधिक प्रभावात्पादक करने वाला, प्रेरणा देने वाली, भिज्ञता ज्ञान बोध तथा ग्रन्थ रचना के पराकाष्ठागत रूप अविभाज्य स्तोत्र एवं प्रत्यक्ष होने से यह ग्रन्थ सबसे अधिक गुण–दोष से निरुपण तथा विवेचन किया ग्रन्थ है। संस्कृत भाषा में लिखे गए ग्रन्थों में संगीत रत्नाकर संगीतशास्त्रों में सबसे लंबे ग्रन्थों के रूप में वर्णित है। यह ग्रन्थ का एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है, जिसका अक्षुण शुद्ध तथा पूर्ण रूप से अखंड रूप में वर्तमान में प्राप्त होता है। प्रायः पं० शारंगदेव जी के बाद ग्रन्थकारों द्वारा संगीत रत्नाकर को प्रमाणित ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया गया अर्थात् संगीत रत्नाकर ग्रन्थ संगीत ग्रन्थकारों के लिए प्रेरणादायक ग्रन्थ है। परवर्ती ग्रन्थकारों ने अपने संगीत के किसी भी विषय के संदर्भ में पर्याप्त प्रमाणों की पुष्टि हेतु, संगीत रत्नाकर को आधार ग्रन्थ के रूप में स्वीकार करते है। संगीत रत्नाकर ग्रन्थ के अभी तक के प्रकाशित संस्करणों में संगीत रत्नाकर ग्रन्थ की श्रेष्ठता को सिद्ध करता है। संगीत रत्नाकर ऐसा प्रमाणिक ग्रन्थ है, जिस पर आज तक सबसे अधिक अध्ययन किया गया है तथा अनेकों भाषाओं में इसका अनुवाद भी हुआ है और सर्वाधिक टीकाएं भी इसी ग्रन्थ पर लिखी गई है। संगीत रत्नाकर के रचनाकाल तक संपूर्ण भारत में संगीत विद्यमान था अर्थात् समूचे भारत में संगीत एक ही रूप में प्रचलन में था। संपूर्ण भारत के संगीत में एकरूपता लाने वाला अंतिम ग्रन्थ संगीत रत्नाकर ही था। तत्पश्चात् भारत में दो पद्धतियां हिंदुस्तानी तथा कर्नाटक संगीत पद्धति का विकास हुआ। संगीत रत्नाकर के बाद इन दोनों पद्धतियों में संगीत बट गया और इनके अलग–अलग पद्धतियों में ग्रन्थों का विकास हुआ।

संगीत रत्नाकर के रचनाकाल के बाद एक शताब्दी में ही सिंहभूपाल द्वारा इस ग्रन्थ की संपूर्ण टीका लिखी गई। संगीत रत्नाकर एक ऐसा रत्नाकर है, जो संगीत के विद्वानों को संगीत रूपी रत्नों से समय–समय पर आभूषित करता रहा है, यहां तक कि हमारे संगीत के आधुनिक गुनीजनों व विद्वानों ने विशेष रुप से पंडित विष्णु दिगंबर भातखंडे जी ने भी इस ग्रन्थ को बहुत महत्व दिया है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि संगीत रत्नाकर के द्वारा रचनाकाल से लेकर वर्तमान काल तक के सभी संगीत के गुरुजनों तथा विद्वानों को इस ग्रन्थ द्वारा संगीत के तीन अंगों गायन, वादन तथा नृत्य के सन्दर्भ में स्पष्ट व्याख्ययन प्रस्तुत किया है जो संगीत के गुरुजनों तथा विद्वानों के सतत मनोयोग को अपनी ओर आकर्षित करता है। पं० शारंगदेव जी द्वारा संगीत रत्नाकर में संगीत के सभी विषयों को

गायन,वादन तथा नृत्य को एकीकृत किया हुआहै तथा इसमें संगीत के सभी अंगो का ज्ञान समाहित है। पं० शारंगदेव जी द्वारा अपने पूर्व के विद्वानों के लगभग चालिस ग्रन्थों को अपने संगीत ग्रन्थ अर्थात् संगीत रत्नाकर में निबद्ध किया है। उन्होंने अपने ग्रन्थ में समृद्ध संगीत को एक सूक्ष्म रूप तथा स्पष्टता के साथ अपने समाहित किया है। अन्ततः देखा जाए तो संगीत रत्नाकर के अतिरिक्त कोई अन्य संगीत ग्रन्थ नहीं प्राप्त होता जिसमें संगीत के सभी विषयों की संयुक्त रूप से चर्चा की गयी हो व जिसमें इतनी स्पष्टता के साथ संगीत शास्त्र का संगठित अल्प परन्तु सम्पूर्ण और प्रत्यक्ष प्रमाण के साथ वर्णन परिलक्षित हो।

3.3 संगीत रत्नाकर ग्रन्थ की टीकाएं

संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में वर्णित संगीत का विस्तृत विवेचन उसकी गुणवत्ता एंव प्रधानता के ध्येय से संगीत रत्नाकर ग्रन्थ पर बहुत से विद्वानों ने टीकाएं लिखी। संगीत शास्त्रों में एक मात्र संगीत रत्नाकर ही ऐसा ग्रन्थ है, जिस पर सबसे अधिक टीकाएं लिखी गयी है तथा उपलब्ध भी है। डॉ० सुभद्रा चौधरी के अनुसार संगीत रत्नाकर ग्रन्थ पर कुल सात टीकाओं की रचना की गयी, जो अन्य किसी ग्रन्थ पर नहीं लिखी गयी है। जिसमें से संस्कृत भाषा में चार टीकाएं रची गयी, हिन्दी भाषा के अर्न्तगत एक टीका तथा तेलगु भाषा में 2 टीकाओं की रचना की गयी। समस्त टीकाकारों के नाम इस प्रकार है– सिंहभूपाल, कल्लीनाथ, केशव, हंसभूपाल, गंगाराम, भावभट्ट तथा कुम्भकर्ण। भावभट्ट द्वारा रचित टीका का नाम चन्द्रिका नाम से प्राप्त होता है परन्तु इन सभी टीकाओं में से मात्र गंगाराम, कल्लीनाथ तथा सिंहभूपाल की ही टीका प्राप्त होती है, अन्य सभी टीकाएं वर्तमान में उपलब्ध नहीं है।

वर्तमान में संगीत रत्नाकर की जो उपलब्ध टीकाएं है, उसमें सबसे अधिक प्राचीन टीका सिंहभूपाल जी द्वारा लिखी गयी ''संगीत सुधाकर'' है इस टीका का प्रधान पाठ का मुख्य अर्थात् मूलकृति को पाठ कह सकते है। इस टीका में सिंहभूपाल जी द्वारा प्रयोजन मूलक मत अधिक प्रयोग किया गया है। गंगाराम द्वारा जो रचना प्रस्तुत की गयी, वह टीका न हो कर संगीत रत्नाकर का अनुवाद मात्र है। गंगाराम रचित जो संगीत रत्नाकर का अनुवाद ग्रन्थ प्राप्त होता है, इसे सेतु नाम से जाना जाता है। यह ग्रन्थ वर्तमान में सरस्वती महल

संजौर के संग्रहालय में स्थित है। सन् 1833 से 1854 के मध्य रीवा नरेश विश्वनाथ बिघेल के दरबार में गंगाराम जी दरबारी थे। कैटलॉग आफ संस्कृत मनुस्क्रिपट फॉम गुजरात काठियावाड, कच्छ, सिंध एण्ड़ खानदेश के 274 पृष्ठ पर प्राप्त होता है[3] कि संगीत रत्नाकर पर पूर्ण टीका हंस भूपाल जी द्वारा लिखी गयी है, जो सिंहभूपाल का अपभ्रंश है। जिस कारण हंसभूपाल को भी टीकाकार के रूप में स्वीकारा गया है। इसके अतिरिक्त केशव की टीका का वर्णन प्राप्त होता है। जिसे एम० कृष्णमचारी ने कौस्तुभा के नाम से उल्लेखित किया है। इसके अलावा सांतवें लेखक का नाम तो प्राप्त नहीं है, लेकिन उनकी लिखित टीका चंद्रिका का नाम प्राप्त होता है तथा कुम्भकर्ण की टीका का भी विवरण प्राप्त नहीं होता है।[4]

सिंहभूपाल का जो परिचय प्राप्त होता है, वह इस प्रकार है कि सिंहभूपाल बहुमुखी प्रतिभा के धनी शासक थे, जिनका राज्य दक्षिण भारत के विंध्यापर्वत तथा श्रीशैल नामक पर्वत श्रंखला के मध्य स्थित था। सिंहभूपाल द्वारा संगीत रत्नाकर की टीका संगीत सुधाकर को संगीत रत्नाकर की प्रथम टीका के रूप में जाना जाता है। संगीत सुधाकर की रचना चौदवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में की गई थी अर्थात् संगीत रत्नाकर की रचना 13वीं शताब्दी में तथा एक शताब्दी पश्चात् प्रथम टीका की रचना की गई। प्रस्तुत टीका में विवेचन से अधिक पूर्वर्ती ग्रन्थों के उद्धरण को भी स्थान दिया गया है, जिनके पाठ वर्तमान में उपलब्ध नहीं होते है, जैसे मतंग कृत बृहद्देशी तथा पार्श्वदेव कृत संगीतसमयसार के खण्ड सिंह भूपाल की टीका में प्राप्त होते है, जो संगीत शास्त्र के सिद्धांतों तथा लक्षणों को समझने में सहायक सिद्ध होते है।

इसी प्रकार संगीत सुधाकर की रचना के एक शताब्दी पश्चात् अर्थात 15वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कल्लीनाथ द्वारा कलानिधि नाम से संगीत रत्नाकर की टीका की रचना की गई। प्रस्तुत टीका के अंतर्गत संगीत रत्नाकर में प्रस्तुत लक्षणों को 15वीं शताब्दी तक आए परिवर्तनों को भी वर्णित किया गया है तथा संगीत रत्नाकर का विवेचन भी प्रस्तुत किया गया है क्योंकि संगीत रत्नाकर तथा कल्लीनाथ की रचनाकाल के मध्य दो शताब्दियों का

(3) डोगरा बिनु/संगीत रत्नाकर में वर्णित अलंकार/पृ०–919
(4) संगीत रत्नाकर पं० शारंगदेव/प्रथम खण्ड़/आडयार स्ंस्करण/पृ०–943 में कुन्हन राजा की भूमिका के आधार पर।

अन्तर प्राप्त होता है। जिसमें 13वीं से 15वीं शाताब्दी के मध्य कई प्रकार के परिवर्तन लक्षणों में हुए। सिंहभूपाल तथा कल्लीनाथ जी द्वारा यह भी वर्णित किया गया है, कि संगीत शास्त्रों तथा ग्रन्थों के प्राचीन लक्षणों को समझने वाले वह ही है। जिस कारण वह लक्षण तथा लक्ष्य के मध्य सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास कर रहे है, परन्तु क्रिया पक्ष व शास्त्र पक्ष के मध्य अत्याधिक अंतर समय के साथ–साथ बढ़ता गया। इस प्रकार संस्करण तथा टीकाओं की जानकारी शोधार्थी को अध्ययन के पश्चात प्राप्त होती है।[(5)] पं० शारंगदेव जी की अन्य कृति आयुर्विद्या पर आधारित है, क्योंकि शारंगदेव जी स्वयं भी आयुर्वेदाचार्य के रूप में जाने जाते है। पं० शारंगदेव जी की इस कृति का नाम ''अध्यात्म विवेक'' है, जिसका वर्णन पं० शारंगदेव जी द्वारा संगीत रत्नाकर के स्वरविवेकाध्याय के पिंडोत्पत्ति प्रकरण के अर्न्तगत स्वयं ही किया गया है।

3.4 संगीत रत्नाकर के संस्करण

संगीत रत्नाकर भारतीय संगीत का आधार ग्रन्थ है। संगीत रत्नाकर के मूल ग्रन्थ के प्रकाशित संस्करण दो प्रकार से प्राप्त होता है। प्रथम वह जिसमें मूलपाठ को मुद्रण सिंहभूपाल तथा कल्लीनाथ की टीकाएं संगीत सुधाकर तथा कलानिधि निहित है, जिसके चार संस्करण प्राप्त होते है, जिसमें मात्र दो टीकाएं संगीत सुधाकर के साथ कलकत्ता से प्रकाशित हुयी, तथा तीसरा प्रकाशन पूना स्थित आनन्द आश्रम से दो खण्डों में प्रकाशित हुआ, जो कलानिधि के साथ प्रकाशित हुआ। आनन्द आश्रम से मुद्रित संगीत रत्नाकर का यह सस्करण संस्कृत ग्रन्थावली के पैंतिसवें ग्रथंक के रूप में प्रकाशित हुआ, जो अनुष्टुप छंद में निबद्ध है तथा एक हजार पृष्ठों का महान ग्रन्थ का मुद्रण हुआ। चौथा प्रकाशन चार खण्ड़ों में मद्रास स्थित आड्यार लाइब्रेरी से प्रकाशित हुआ, जिसमें सिंहभूपाल की संगीत सुधाकर तथा कल्लीनाथ की कलानिधि दोनों का एक साथ संगीत रत्नाकर के साथ टीकाओं को वर्णित किया गया है। जिसमें संगीत रत्नाकर का पूर्ण पाठ निहित है। दूसरा वह जो मुल पाठ के साथ अंग्रजी, तेलगु, हिन्दी, मराठी तथा कन्नड़ जैसी विभिन्न भाषाओं के अनुवाद के साथ प्रकाशित हुआ। इसमें कुल छः संस्करण प्रकाशित होने की जानकारी प्राप्त होती है। संपूर्ण संगीत रत्नाकर का पाठ मात्र मराठी भाषा में वर्णित अनुवाद के साथ

(5) चौधरी सुभद्रा / पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / खण्ड़–1 / पृ०–12–13

ही प्राप्त होता है। पं० शारंगदेव जी कृत 13वीं शताब्दी का महान ग्रन्थ संगीत रत्नाकर की रचना के पश्चात् संगीतशास्त्र के अनेक शास्त्रकारों व विद्वानों ने इस ग्रन्थ पर टीकाएं लिखी और बहुत से विद्वानों ने इस महान ग्रन्थ को अपने–अपने ग्रन्थों में प्रस्तुत किया। आधुनिक युग के संगीत शास्त्रकारों व विद्वानों ने भी इस श्रेष्ठ ग्रन्थ पर कई लेख लिखे व कदाचित नए–नए संस्करणों को प्रकाशित भी किया। शोधार्थी द्वारा इन्हीं संस्करणों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

1889– वर्ष में कलकत्ता के शारदा प्रसाद घोष तथा काली तारा वेदांतवागीस ने संगीत रत्नाकर का संस्करण आर्य प्रेस कलकत्ता से प्रकाशित किया। इस संस्करण में सिंहभूपाल की टीका सहित प्रकाशन संगीत रत्नाकर के प्रथम अध्याय स्वराध्याय के साथ सम्मिलित किया।

1896– वर्ष संस्कृत ग्रन्थ आनन्द आश्रम से मुद्रित का यह सस्करण संस्कृत ग्रन्थावली के पैंतिसवें ग्रथंक के अर्न्तगत संगीत रत्नाकर को प्रकाशित किया गया। इस ग्रन्थावली के प्रथम खण्ड़ में कल्लीनाथ की कलानिधि टीका सहित एक से पांच अध्यायों के साथ सम्मिलित थी, जो मंगेश रामकृष्ण तैलंग ने सम्पादन किया है।

1942– वर्ष में पूना स्थित आनन्द आश्रम से विनायक गणेश आप्टे द्वारा भी संगीत रत्नाकर का एक और संस्करण प्रकाशित किया गया।

1943– वर्ष में एक अत्यन्त अभूतपूर्व रूपरेखा के आधिन संगीत रत्नाकर कि सम्पूर्ण सात अध्यायों को जिनमें कल्लिनाथ की टीका कलानिधि और सिंहभूपाल की रचित टीका संगीत सुधाकर इस दोनों ही टीकाओं का सम्मिलित चार खण्डों को प्रकाशित किया गया। जिसमें प्रथम खण्ड़ में प्रथम अध्याय युक्त प्रकाशित किया गया। इस संस्करण का संपादन पं० एस० सुब्रह्मण्यम शास्त्री द्वारा किया गया।

1944– में पं० एस० सुब्रह्मण्यम शास्त्री द्वारा ही इसका द्वितीय खण्ड जिसके अर्न्तगत दो से चार अध्यायों को समाविष्ट करके सम्पादित किया गया। इसका प्रकाशन अड्यार लाइब्रेरी सिरीज क्रम पैंतालिस में सम्मिलित किया गया।

1945– में सी० कुन्हन राजा के द्वारा इसका एक और संस्करण अंग्रजी भाषा में आड्यार द्वारा ही प्रकाशित किया गया। जिसमें संगीत रत्नाकर का प्रथम अध्याय स्वराध्याय का अंग्रजी अनुवाद किया गया। इसी वर्ष सीरीज क्रमाकं 78 के अंतर्भुत पं० एस० सुब्रह्मण्यम शास्त्री द्वारा ग्रन्थ के पांचवें तथा छठें अध्याय को समाविष्ट कर इसका तृतीय खण्ड अड्यार लाइब्रेरी द्वारा एक और संस्करण प्रकाशित किया गया।

1953– अड्यार लाइब्रेरी सीरीज क्रमाकं 86 के अंतर्भुत पं० एस० सुब्रह्मण्यम शास्त्री ने अड्यार लाइब्रेरी संस्करण चतुर्थ खण्ड के अर्न्तगत संगीत रत्नाकर के सप्तम अध्याय को शामिल किया गया तथा अड्यार लाइब्रेरी द्वारा ही प्रकाशित किया गया।

1957– में संगीत रत्नाकर कि छठे तथा सातवें अध्याय को कल्लिनाथ के कलानिधि टीका सहित समाविष्ट कर महेश रामकृष्ण तैलंग द्वारा आनन्द आश्रम पूना से संगीत रत्नाकर के द्वितीय खण्ड को प्रकाशित किया गया।

1963– इस सन् में संगीत रत्नाकर के प्रथम स्वराध्याय के मुख्यपाठ के लघु संस्करण का हिन्दी अनुवाद डॉ० लक्ष्मीनारायण गर्ग तथा आचार्य चक्रपाणी के द्वारा प्रस्तुत किया गया था। इस संस्करण का प्रकाशन संगीत कार्यालय हाथरस द्वारा प्रकाशित किया गया तथा 1975 में हाथरस से ही इसका दूसरा संस्करण भी प्रकाशित किया गया।

1966– इस सन् में गन्दम श्री राममूर्ति के द्वारा तथा संगीत नाटक अकादमी हैदराबाद कला परिषद सीरीज चार के अंतर्भत संगीत रत्नाकर के प्रथम अध्याय (स्वराध्याय) जो कल्लिनाथ की कलानिधि टीका तथा संगीत रत्नाकर को तेलगु अनुवाद सहित प्रकाशित किया गया।

1975– महाराष्ट्र राज्य साहित्य संस्कृति मंडल मुम्बई के द्वारा संगीत रत्नाकर के चार अध्याय का कल्लिनाथ की कलानिधि टीका सहित मराठी अनुवाद भाषान्तर माला क्रम छयालिस के अर्न्तगत प्रकाशित किया गया।

1976–संगीत रत्नाकर के सप्तम अध्याय (नृत्याध्याय) को डॉ० के० कुंजुन्नी तथा राधा वर्नियर के द्वारा नृत्याध्याय के 1670 श्लोकों में से 498 श्लोकों का अंग्रजी में अनुवाद

किया गया तथा मद्रास की अड्यार लरइब्रेरी रिसर्च सेण्टर के अर्न्तगत प्रकाशित किया गया।

1978– इस सन् में 1943 में अड्यार लरइब्रेरी द्वारा प्रकाशित प्रथम खण्ड के मुख्यपाठ पर आधिारित आर० के० श्रृंगी द्वारा प्रेमलता शर्मा के निरक्षण में संगीत रत्नाकर के स्वराध्याय का अंग्रजी अनुवाद किया गया। इसी को रंगारामानुजा आयंगर द्वारा संगीत रत्नाकर के मुख्य पाठ को ग्रन्थ में वर्णित विषयवस्तु को अपने शब्दों में व्यक्त किया गया तथा इसका अंग्रजी अनुवाद किया गया है। जिसका प्रकाशन विहंस पब्लिशिंग हाऊस बम्बई द्वारा हुआ।

इस प्रकाशन के आरम्भ में भूमिका के दक्षिण भारत के संगीत का वर्णन किया गया है।

1984– आर० के० श्रृंगी द्वारा एक बार फिर से जिस प्रथम खण्ड का प्रकाशन 1978 में किया गया था। जिसमें संगीत रत्नाकर के स्वराध्याय के अंग्रजी अनुवाद को शामिल किया था। इस प्रकाशन मोतीलाल बनारसीदास द्वारा दिल्ली से किया गया है।

1986– सीरीज क्रम 78 के अंर्तगत पूर्व संपादन पं० एस० सुब्रह्मण्यम शास्त्री कि पौत्री एस० शारदा के द्वारा संगीत रत्नाकर के पंचम अध्याय (तालाध्यया) तथा छठे अध्याय (वाद्याध्याय) को सम्मिलित कर अड्यार लाइब्रेरी मद्रार द्वारा प्रकाशित किया गया था।

1989– में श्री ग० ह० तारलेकर द्वारा संगीत रत्नकर के पंचम अध्याय तथा छठे अध्याय का दूसरा खण्ड़ जिसको कल्लिनाथ की टीका कलानिधि के साथ मराठी भाषा में अनुवाद कर प्रस्तुत किया गया, जो महाराष्ट्र राज्य साहित्य संस्कृति मण्डल मुम्बई द्वारा प्रकाशित की गयी है। इसके अतिरिक्त 1989 में ही आर० के० श्रृंगी द्वारा संगीत रत्नाकर के तृतीय तथा चतुर्थ अध्याय का अंग्रजी अनुवाद प्रेमलता शर्मा के निरक्षण में संस्करण हुआ, जिसका प्रकाशन मुंशी राम मनोहर लाल द्वारा दिल्ली से हुआ था।

इस प्रकार पं० शारंगदेव जी ने ''संगीत रत्नाकर'' जैसे ग्रन्थ को रचित करके जो कठिन तथा असाधारण काम किया है। इस ग्रन्थ को जो संगीत रत्नाकर की संज्ञा के अनुकूल ही है, परन्तु सिंहभूपाल तथा कल्लिनाथ द्वारा जो कलानिधि तथा सुधाकर टीका की रचनाकार को अपनी सूझ–बूझ तथा ज्ञान से संजोकर संगीत प्रमियों के हित के लिए संगीत के सागर

के अन्दर से छिपे मोती या अमृत को बाहर निकालकर तथा संगीत के सागर को पार करने हेतु एक सेतु का निर्माण किया है।

3.5 संगीत रत्नाकर ग्रन्थ का संक्षिप्तीकरण

संगीत रत्नाकर ग्रन्थ मूलतः संगीत का लक्षण ग्रन्थ है। यद्यपि इस ग्रन्थ के नृत्याध्याय में नाटक का भी वर्णन प्राप्त होता है, तदनुरूप गीत, वाद्य तथा नृत्य संगीत के इन तीनों अंगों का लक्षण ग्रन्थ है। संगीत रत्नाकर ग्रन्थ को पं० शारंगदेव जी द्वारा मुख्य सात अध्यायों में विषय का प्रतिपादन किया है, जो क्रमशः **1.** स्वरगताध्याय, **2.** रागविवेकाध्याय, **3.** प्रकीर्णाध्याय, **4.** प्रबन्धाध्याय, **5.** तालाध्याय, **6.** वाद्याध्याय तथा **7.** नर्तनाध्याय।

पं० शारंगदेव जी ने इन सातों अध्यायों के अन्दर इनके उपध्याय भी बताऐं है। इसमें सबसे पहले अध्याय में आठ उप–अध्याय है, जिसको पदार्थ संग्रह प्रकरण, पिण्डोत्पत्ति प्रकरण, नाद, स्थान, श्रुति, स्वर जाति कुल, देवता, ऋषि, छन्द, रस प्रकरण, चौथा प्रकरण ग्राम, मूर्च्छना, क्रम–तान, उसके बाद साधारण प्रकरण तत्पश्चात् वर्ण अलंकार प्रकरण, सांतवां प्रकरण जाति प्रकरण तथा आठवां प्रकरण गीतिप्रकरण है। द्वितीय अध्याय में दो प्रकरणों का वर्णन किया है। जिसमें पहला प्रकरण ग्रामराग, उपराग, राग, भाषा, विभाषा अन्तरभाषाविवेक व छः प्रकार के रागों का वर्णन किया गया है और दूसरे प्रकरण में देशी वर्ण के रागांग, भाषांग, क्रियांग तथा उपांग रागों का विवेचन किया गया है। तृतीय अध्याय के अर्न्तगत जिन विषयों का वर्णन किया गया है, वह इस प्रकार है। वाग्येकार के लक्षण, गायक के भेंद, शब्द के भेंद, शरीर के गुण–दोष, स्थाय के लक्षण, गमक, आलप्ति तथा वृन्द जैसे विषय का वर्णन किया है। ग्रन्थ का चतुर्थ अध्याय प्रबन्धाध्याय है, जिसमें नाट्य के साथ संगीत की निबद्ध रचनाओं से अंगीकृत है। जिसके अर्न्तगत गीत के लक्षणों का वर्णन तथा गन्धर्व गान इन दो भेंदों का वर्णन प्राप्त होता है और प्रबन्ध के भेंद, उसके तत्व तथा प्रबन्ध के हर एक लक्षण और गीत के गुण–दोषों को वर्णन प्राप्त होता है।

पंचम अध्याय ताल आधारित अध्याय है, जिसके अर्न्तगत मार्गताल व देशी तालों का वर्णन है। इसके साथ ही ताल के तत्व, ताल प्रत्यय, तथा गीतक प्रमाणित है। छठा अध्याय वाद्याध्याय है, जिसमें वाद्यों के चर्तुविधि स्वरूप का वर्णन है अर्थात् वाद्यों को चार भागों में

वर्गीकृत तत्, सुषिर, अवनद्ध तथा घन में किया है। जिसमें उनकी बनावट, उनकी वादन प्रक्रिया तथा वीणा और वंश पर रागालाप्ति को वर्णित किया है इसके अतिरिक्त अवनद्ध में वाद्यप्रबन्ध का वर्णन है। सांतवां तथा अन्तिम अध्याय है, जो नृत्य आधारित अध्याय है, इसमें नृत के तत्व, नृत्य की विधाएं, नवरस तथा नृत्य सम्बधित अन्य विषय भी सम्मिलित है।

3.5.1 स्वरगताध्याय

प्रस्तुत अध्याय स्वर उत्पत्ति हेतु जिन संसाधनों की आवश्यकता होती है, उस पर आधारित है।

3.5.1.1 पदार्थ सग्रंह

संगीत रत्नाकर ग्रन्थ के प्रथम अध्याय स्वरगताध्याय को आठ प्रकरणों में बांटाँ गया है, जिसमें प्रथम प्रकरण के अर्न्तगत पदार्थसंग्रह नामक प्रकरण का आरम्भ मगंलाचरण से किया है, जिसके बाद पं० शारंगदेव जी ने अपने वंश का परिचय देते हुए, अपने से पूर्व के आचार्यों का आभार प्रकाट किया है। साथ ही ग्रन्थ की विषय सूची का भी वर्णन किया है। मंगलाचरण में पं० शारंगदेव जी वर्णन करते है, कि आद्वितीय सुख की प्राप्त के लिए मैं शिव रूप का वन्दन करता हुँ, जो शिव नाद स्वरूप में विद्यमान है, अनादि तथा सृष्टि के प्रक्रिया के आदि स्त्रोत है तथा नाद स्वरूप में विराजमान तथा ब्रह्मग्रन्थि से उपजा हुआ वायु से अंगीकृत होता है तथा जो संगीत में स्वरां की अभिव्यंजना श्रुतियों का मूल तत्व है। जिनसे ग्राम, वर्ण, अलंकार, तथा जाति आविर्भूत होते है। अनंतर पं० शारंगदेव जी द्वारा अपने वशं का परिचय प्रस्तुत किया गया है।[(6)]

संगीत रत्नाकर ग्रन्थ के प्रथम अध्याय के आरम्भ में ब्रह्मग्रन्थिमारन्तानुर्गतिनों से प्रथम श्लोक में अर्थालंकार का उपयोग करते हुए, मंगलाचरण किया है। जिस रिति से संस्कृत साहित्य की परम्परा से चली आ रही दृष्ट–अदृष्ट फल की अभिलाषा व ग्रन्थ की निभाने की आकांक्षा से सभी ग्रन्थकर्ता अपने ग्रन्थ का शुभारम्भ करने से प्रथम अपने इष्ट देवता का स्मरण करते है। उसी तरह से संगीत रत्नाकर ग्रन्थ के आरम्भिक श्लोक में पं०

---

(6) चौधरी सुभद्रा / पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / खण्ड़–1 / अध्याय–1 / श्लोक–1

शारंगदेव जी द्वारा संगीत के आदि–देव शिव का स्मरण किया है।[7] प्रयुक्त श्लोक में हन्यपंकजे, सुरीणां, श्रुतिपंद, वर्ण, ग्राम, जाति, अलंकार, नादतनुं, शंकर आदि देव की वंदना करते हुए, संगीत के मुख्य अवयवों का गौण रूप भी पं० शारंगदेव जी ने उक्त श्लोक में कर दिया है। पं० शारंगदेव जी ने शिव की स्तुति (स्मरण) करते हुए शिव को ब्रह्म का सगुण रूप मानते हुए, उनकी उपासना नादब्रह्म के साथ जोड़ के मंगलाचरण किया है।

मंगलाचरण के पश्चात् पं० शारंगदेव जी ने अपने वंश परम्परा, शरणदाता तथा स्वंय का परिचय देते हुए, जो श्लोक लिखे है, वह सभी श्लोक ग्रन्थ के महत्वता को और अधिक बढता है। प्राचीन काल में ही कश्मीर की भूमि श्री व संपति के साथ–साथ पंडितों, विद्वानों, वाग्येकारों तथा दार्शनिकों की जन्म तथा कर्म पुण्य–भूमि रही है। कश्मीर प्राचीनकाल में वैदिक ऋषियों–मुनियों का स्थल माना जाता रहा है तथा उनमें वृषगण नामक ऋषि (ऋग्वेद में गायक) से उत्पन्न एक वंश था।[8] ग्रन्थ के इस अध्याय में पं० शारंगदेव जी द्वारा अपने वंश परम्परा के साथ अपने भूतपूर्व आचार्यों का भी वर्णन स्पष्ट रूप से किया है। जिनकें विचारों का अवलंबन करके पं० शारंगदेव जी ने संगीत रत्नाकर ग्रन्थ की रचना की।[9] इन आचार्यों का वर्णन करते हुए उनके नाम श्लोक 16 से 20 तक के श्लोकों में कहे है। जिनमें सदाशिव, पार्वती, ब्रह्मा, भरतमुनि, कश्यप, मतंग, कोहल, याष्टिक, शार्दूल, रम्भा, दुर्गाशक्ति, विशाखिल, दत्तिल, कम्बल, अश्रातर, वायु, अर्जुन, विश्वासु, नारद, तुम्बरू, आंजनेय, मात्गुप्त, रावण, नन्दिकेश्वर, स्वातिगण, बिन्दुराज, श्रेत्रराज, राहुल, रूद्रट, नान्यभूपाल, भोज, भूल्लम, परमर्दी, सोमेश, जगदेव तथा महीपति और भरत के समालोचक, लोल्लट, उद्भट्ट, शंकुक, भट्ट, अभिनवगुप्त और कीर्तिधर आदि है।[10]

तत्पश्चात् संगीत के लक्षण और भेंद किए है, जिसमें ग्रन्थकार ने कहा है कि गीत, वाद्य और नृत्य तीनों को संगीत कहते है अर्थात् गीत, वाद्य और नृत्य तीनों को संयुक्त करके संगीत कहा जाता है।

---

(7) चौधरी सुभद्रा / पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / खण्ड़–1 / अध्याय–1 / श्लोक–2
(8) चौधरी सुभद्रा / पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / खण्ड़–1 / अध्याय–1 / श्लोक–3
(9) चौधरी सुभद्रा / पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / खण्ड़–1 / अध्याय–1 / श्लोक–4
(10) चौधरी सुभद्रा / पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / खण्ड़–1 / अध्याय–1 / श्लोक–15–20

गीत वाद्यं तथा नृतं त्रय संगीत मुच्यते।(11)

तथा संगीत के दो भाग अर्थात् दो प्रकार कहे है, मार्गी संगीत तथा देशी संगीत। मार्गी संगीत का वर्णन करते हुए कहा है, कि जो संगीत ब्रह्मा उत्पन्न तथा भरत व दूसरे आचार्यों के द्वारा महादेव शिव के सामने प्रस्तुत किया गया, वह मार्गी संगीत है तथा देशी संगीत वह संगीत है, जो जन समाज की रूचि हेतु उनके मनोरंजन के लिए व विभिन्न प्रान्तों के लोगों की रूची हेतु के लिए बनाया गया संगीत है।(12)

पं० शारंगदेव जी द्वारा गीत की महत्वता को अधिक बताते हुए वर्णन किया है कि नृत्य वाद्य के अनुकूल है और वाद्य, गीत का अनुसरण करता है। फलतः गीत संगीत का प्रधान तत्व है। अतः पं० शारंगदेव जी द्वारा संगीत के मूलभूत तत्व की आदिम व्याख्या की है तथा गीत की प्रशंसा की है।(13) वेदों में चारों वेदों में से सामवेद को संगीत का वेद कहा है तथा गीत की प्रशंसा करते हुए, गीत का संबंध सामवेद से जोड़ा है। अतः गीत का संग्रह सामवेद से और सामवेद से ब्रह्मा जी द्वारा संगीत का प्रवाह कहा गया है। पं० शारंगदेव जी ने गीत को देवताओं, यक्ष, गन्धर्व, देव तथा मानव को प्रसन्न करने का साधन माना है।(14) गीत की महत्वता का वर्णन करते हुए पं० शारंगदेव जी ने बालक (शिशु) का उदाहरण लेते हुए कहा है, कि जिस प्रकार एक रोता हुआ बालक जिसे कोई स्वाद का अनुमान नहीं है। किसी प्रकार का कोई ज्ञान नहीं वह रोता हुआ बालक गीत का स्मरण करके गहरी निद्रा में चला जाता है अर्थात् शान्त हो जाता है तथा उसी तरह एक मृग–पशु, गीत के लिए अपने जीवन का त्याग कर देता है। ऐसा वर्ण प्राप्त होता है, इसके पश्चात् पं० शारंगदेव जी ने गीत की प्रशंसा में गीत को धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों पदार्थ के फल प्राप्ति का अवयव कहा है।(15)

पदार्थ संग्रह के विषय संग्रह के अर्न्तगत प्रथम अध्याय जो स्वरों पर आधारित है, पं० शारंगदेव जी ने नाद की उत्पत्ति मानव शरीर तथा श्रुतियों का वर्णन करते हुए, सात शुद्ध

---

(11) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–1/अध्याय–1/श्लोक–21
(12) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–1/ अध्याय–1/श्लोक–22–23
(13) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–1/ अध्याय–1/श्लोक–24–25
(14) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–1/ अध्याय–1/श्लोक–27
(15) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–1/ अध्याय–1/श्लोक–28–30

स्वर तथा बारह विकृत स्वरों का उल्लेख करते हुए, उनके कुल जाति, वर्ण, द्वीप, ऋषि तथा देवता का भी वर्णन किया है। याथदि स्वर के छन्द विनियोग सम्बन्ध तथा श्रुति, जाति, ग्राम, मुर्च्छना, संख्या के अतिरिक्त शुद्ध तान, कूटतान, प्रस्तार, निष्ट तथा उद्दिष्ट के ज्ञापक, स्वरसाधारण, खण्डमेरू आदि का वर्णन किया है।

इसके अतिरिक्त पं० शारंगदेव जी ने जाति साधारण, काकली तथा अन्तर स्वरों का युक्ति संगत उपयोग तथा वर्ण के लक्षण का वर्णन करते हुए 63 प्रकार के अलंकारों का उल्लेख किया है। इसके अलावा जातियों के तेरह प्रकार के लक्षण (संज्ञा) तथा कम्बल, कपाल के अतिरिक्त विविध प्रकार की गीतियाँ (गीतों के प्रकार) का वर्णन किया है।[(16)] इसी प्रदार्थ संग्रह के अर्न्तगत पं० शारंगदेव जी ने संगीत रत्नाकर के सातों अध्यायों का विषय संग्रह का वर्णन किया है। इसके पश्चात् दूसरा अध्याय रागविवेकाध्याय है, जिसमें ग्रामराग, उपराग, राग, भाषा और विभाषा को क्रमवध वर्णन किया है। उसके उपरान्त, अन्तरभाषा, रागांग, भाषागं, उपागं, क्रियांग का सम्पूर्ण प्रकृत रूप में उल्लेखित किया है।[(17)]

इसके बाद तीसरे अध्याय प्रर्कीणाध्याय है, जो विभिन्न विषय से सम्बन्धित है। इसमें वाग्गेयकार (वह व्यक्ति जो काव्य या कवित्त की रचना करें) गांधर्व, स्वरादि, गायक और गायिका के गुण–दोष तथा उनके स्वर–भेंद शब्द के गुण–दोष, शरीर के गुण–दोष, स्थाय, गमक, वृन्द और आलाप्ति आदि के लक्षणों का निरूपण किया है।[(18)] इसके बाद प्रबन्धाध्याय जो ग्रन्थ में चतुर्थ अध्याय है, इसमें पं० शारंगदेव जी ने धातुएं, अंग, जाति, दो तरह के सुड़, शुद्ध और छायालंग, आलिक्रम, प्रबन्ध आदि जो सभी सूड तथा जो सभी आलिक्रम के आश्रय करें, विपकीर्ण (अलग–अलग करके गाए जाने वाले प्रबन्ध) जो प्रबन्ध छायालंग तथा सूझ के आश्रय रह के गाए जाते है और गीत के गुण–दोष का उल्लेख किया है।[(19)] संगीत रत्नाकर का पंचावां अध्याय ताल पर आधारित है। इस अध्याय में पं० शारंगदेव जी ने मार्ग ताल तथा देशी ताल का वर्णन करते हुए, कला, पात, मार्गचतुष्टय, आठ मार्ग, कला, गुरू, लघु आदि की परिभाषा, एक कलत्वादि, उनके भेद, पादभाग, मात्रा,

---

(16) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–1/ अध्याय–1/श्लोक–31–36
(17) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–1/ अध्याय–1/श्लोक–37–38
(18) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–1/ अध्याय–1/श्लोक–39–40
(19) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–1/ अध्याय–1/श्लोक–41–43

ताल में हस्तक्रिया (पात) ताली, खाली तथा कला का नियम ताल के अंगुलिनियम, युग्म, गीतक, छन्दक आदि गीत, गीत के अंग, ताल के अंग, समूह तथा ताल समूह का ज्ञान इस सभी का वर्णन इस अध्याय में किया गया है। इसके पश्चात् छठें अध्याय में वाद्य सम्बन्धित अध्याय कहा है।

इस अध्याय में सभी प्रकार के वाद्यों के बारें में वर्णन किया है तथा तत्, सुषिर, अवनद्ध और घन इस चतुर्विध वाद्यों के भेद उनकी बनावट, अर्थात् लक्षणों का वर्णन करते हुए उनके करण, धातु निर्गीत, हस्तपाट, वाद्य प्रबन्ध आदि का उल्लेख किया है और अन्त में संगीत रत्नाकर में पं० शारंगदेव जी द्वारा नृत्याध्याय रखा है, जिसके अर्न्तगत नृत्य के विभिन्न प्रकार के रसों का वर्णन तथा भाव का वर्णन किया गया है।[(20)]

3.5.1.2 पिण्डोंत्पत्ति प्रकरण

प्रथम अध्याय के प्रथम प्रकरण पदार्थ संग्रह के पश्चात् इसी अध्याय के अर्न्तगत दूसरा प्रकरण पिण्डोंत्पत्ति प्रकारण कहा है। जिसमें पं० शारंगदेव जी द्वारा सर्वप्रथम नाद की महत्वता को बताते हुए, नाद को गीत की आत्मा की संज्ञादि है। उनका मानना है कि संगीत में वाद्य संगीत भी तभी रंजकता उत्पन्न कर सकता है, जब उसमें नाद स्पष्ट रूप से उत्पन्न हो रहा हो और नृत्य इन दोनों (गीत तथा वाद्य) का अनुसरण करता है। अतः यह तीनों गीत, वाद्य तथा नृत्य नाद के प्रत्यक्ष निर्भर है। नाद के द्वारा वर्ण उत्पन्न होता है। वर्ण से पद प्रकाशित होता है। अतः पद के द्वारा भाषा बनती है व जीवन में भाषा के द्वारा सभी काम होते है। सभंवतः सम्पूर्ण जगत नाद के आधीन है तथा नाद के दो भेद कहे गए है, आहत और अनाहत। यह नाद मानव के शरीर में उत्पन्न होते है।

आहत नाद जो एक साधारण मनुष्य की वाणी संबंधों के आचरण में आाधारित है, जो शरीर में प्रकट होता ही है। अनाहत नाद उस नाद को कहा है, जो योगिगम्य कहा है अर्थात् वह नाद जो एक योग पुरूष अर्थात् योगियों द्वारा अपने शरीर के अन्दर सुना जा सकता है। इस प्रकार से शरीर में नाद की अविव्यंजना होने के कारण नाद की प्रशांसा के पश्चात्

---

(20) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–1/श्लोक–44–48

शरीर की समीक्षा की है।[21] पं० शारंगदेव जी ने इसके बाद ब्रह्म के स्वरूप और ब्रह्म के मनुष्य शरीर में प्रवेश करने के क्रम का विवेचन किया है। वैदिक साहित्य में ब्रह्म के दो रूप कहे है–निर्गुण और सगुण। इस प्रकार ब्रह्म स्वरूप का वर्णन करते हुए, पं० शारंगदेव जी ने कहा है कि ब्रह्मज्ञान सुख–स्वरूप प्रकाशमान, पवित्र, निरंजन, परमात्मा, लिंग जिसमें संसार विलीन होता है आर्थात् जो संसार का कारण है। अद्भुत, जन्मरहित, सार्वजनिक, निराकार, अपरिवर्तित सभी के प्रभु अनश्वर, सर्वशक्तिमान तथा संपूर्णज्ञाता है, जो जीव नाम से जाना जाता है, वह उसका अंश रूप है।

उप्रयुक्त वर्णन में ब्रह्म के लक्षण उसके सगुण तथा निर्गुण दोनों रूपों से संयुक्त संगंधित है। जीव संज्ञका तदांशाः का वर्णन करते हुए, ब्रह्म के सगुण रूप के संक्रमण का क्रम प्रारम्भ किया है।[22] इसके पश्चात् पं० शारंगदेव जी ने जीव का स्वरूप और जीव द्वारा देह प्राप्ति का प्रकृतिक वर्णन किया है, जिस प्रकार से तेज अग्नि के अंश (अवयव), लकड़ी का तिनका तथा मणि आदि विशेष लक्षण से स्फूटित, स्फूलिग, चिनकारी कही जाती है, उसी तरह से अनादि, अविधा से अविभक्त पुण्य और पाप के रूप में सुख–दुख के नित्य कर्मों से प्रतिबिंधित हो, उस–उस जाति से शरीर, आयु तथा कर्मों से उपजे भोग को अपनी सभी जन्मों में प्राप्त करते है। प्रस्तुत अध्याय के इस प्रकरण में पं० शारंगदेव जी द्वारा जीव, आभा और जगत् का भेद तथा जीव का स्वरूप और जीवों की देह प्राप्ति और मनुष्य शरीर की उत्पत्ति का क्रम बताते है। पं० शारंगदेव जी द्वारा चार प्रकार की देह का वर्णन किया है। पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्णन किया गया है कि उस ब्रह्म की अनुमती द्वारा ब्रह्म ने मन से ही दक्ष आदि प्रजापतियों को उत्पन्न कर उनके द्वारा रेतसी सृष्टि अर्थात् वीर्य, रक्त वाली सृष्टि उत्पन्न करी। इस सृष्टि में पं० शारंगदेव जी ने चार प्रकार के शरीर (देह) का वर्णन करते हुए कहा है–

स्वेदाद भेदजरायवण्डहेतु भेदाच्चतु र्विधम्।
छेहं युकाऽऽदिनः स्वेदादुद्भेदातृ लताऽऽदिन।।
जरायोर्मानुषादीन मण्डात्तु विहगादिः।।[23]

---

(21) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–2/श्लोक–1–2
(22)चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–2/श्लोक–1–3
(23) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–2/श्लोक–16–17

अर्थात्– रवेद–पसीना, उभद्दे अर्थात् अंकुर द्वारा, जरायु अर्थात् गर्भ के द्वारा अपेर अंड़ें के द्वारा शरीर का निरूपण बताया है। जिसमें स्वेद पसीने से जूँ आदि उभ्दे (अंकुर) से लता आदि पेड़ पौधे, जरायु अर्थात् गर्भाशय ये मानव–मनुष्य शरीर और अंड़ें द्वारा पक्षी आदि का शरीर उत्पन्न होता है।

इस प्रकार इन चार प्रकार के शरीरों का वर्णन करते हुए, पं० शारंगदेव जी ने मनुष्य शरीर को नाद उत्पत्ति का साधन कहा है। पं० शारंगदेव जी ने मानव देह का ही विवेचन किया है। अब प्रश्न यह है कि मनुष्य शरीर को ही नाद उत्पत्ति का साधन क्यों कहा है? इसके उत्तर में कल्लिनाथ जी ने वर्णन प्रस्तुत किया है कि लता (उभ्देज) आदि पेड़ अचेतन है, जूँ आदि का शरीर बहुत छोटा है। पक्षियों आदि के शरीर में पूरी अस्थियां (शुक्र) तथा नाडियाँ न होने से उनमें भी नाद उत्पन्न नहीं हो पाता, उसके बाद गर्भ से जन्म लेने वाले पशुओं का शरीर सभी भाग अंश द्रव्य से पूरा होने के बाद भी वे आडें होते है अर्थात् पशु सीधे खड़ें होने में सर्मथ नहीं होते है। पशुओं का शरीर वक्र स्थिति में होता है तथा उनकी वाणी का शक्ति भी निर्धारित होती है। गर्भ से उत्पन्न केवल मनुष्यों का शरीर ही है, जो आहत और अनाहत नाद दोनों को भिन्न–भिन्न रूपों में अभिव्यक्त कर सकता है। इसलिए पं० शारंगदेव जी ने मानव शरीर को ही नाद के लिए उपयोगी कहा है। मानव शरीर मोक्ष का भी साधन है और सुख तथा दुख का भोग भी मनुष्य शरीर में होता है और अनाहत तथा आहत नाद का सामर्थ्य भी मानव शरीर से ही उत्पन्न होता है। इसलिए पं० शारंगदेव जी द्वारा संगीत से विषयन ग्रन्थ में पिण्डोत्पत्ति समीक्षा को उपयोगीतापूर्ण होने की पुष्टि की है।

3.5.1.3 नाद, स्थान, श्रुति आदि तथा रस प्रकरण

नाद की उत्पत्ति का आधार मानव शरीर को कहते हुए, उसकी समालोचना करने के पश्चात् प्रथम अध्याय के तीसरे प्रकरण में नाद तथा नाद से जुड़ें तथ्यों की समीक्षा की गयी है। पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्णित है, कि उस ब्रह्मरूपी नाद की अराधना करता हुँ, जो अद्वितीय (अनोखा, बेजोड़) है, जो आनन्द देने वाले गुणों से अलंकृत है तथा सभी

प्राणियों में चैतन्य जगत रूप में निवारित है।[24] जिस प्रकार जीवन में दिखने वाली प्रत्येक जड़–चेतन वस्तु में ब्रह्म अलंकृत है, अतः उसी तरह से श्रुति, वर्ण सभी प्रकार की ध्वनि भ्रमि नाद का ही भास होता है। इसलिए जगत (जीवन) में नाद का रोपण होता है। तत्पश्चात् पं० शारंगदेव जी ने वर्णन किया है कि जब ब्रह्म जीवन प्रकट होता है, तब जीवन की नादरूप शक्ति भी तीन रूपों में विभाजित होती है। पहले सृष्टि की उत्पत्ति होती है, फिर उसका पालन तथा अन्त में लय अर्थात् संहार होता है। इस प्रकार पं० शारंगदेव जी ने कहा है कि सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्मा से होती है। पालन विष्णु द्वारा तथा संहार महेश महादेव (शिव) द्वारा होता है अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश को जीवन चक्र का प्रतीक माना जाता है, क्योंकि ब्रह्म और ब्रह्म की शक्ति नादरूप है, अतः यह तीनों देव भी नादरूप है तथा इनकी उपासना भी नाद द्वारा ही होती है, क्योंकि यह तीनों देवता नाद से भिन्न नहीं है।[25] इसके पश्चात् नाद के पांच प्रकारों का वर्णन किया है, जो क्रमशः अतिसूक्ष्म, सूक्ष्म, पुष्ट, अपुष्ट और कृत्रिम है। नाद उत्पत्ति के शरीर के पाँच स्थानों को कहा है, नाभि, हृदय, कंठ, मूर्द्धा व मुख माने गए है। जिसमें से अतिसूक्ष्म तथा सूक्ष्म नाद नाभि और हृदय में प्रकट होते है, कंठ द्वारा पुष्ट नाद व मुख द्वारा अपुष्ट नाद[26] को वर्णित किया है। इसके पश्चात् नाद शब्द की निरूक्ति करते हुए उल्लेखित किया है कि–

नकारं प्राणनामान दकारमनंल विदुः।
जताः प्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोंऽभिधीयतेः।।[27]

अर्थात्– नकार (न) शब्द से प्राण वायु तथा दकार (द) शब्द से अनंत अर्थात् अग्नि है। इस तरह प्राण तथा अग्नि से युक्त होने से नाद शब्द की उत्पत्ति कही है तथा व्यवहार में अर्थात् गान क्रिया में नाद के तीन प्रकार कहे है, जो हृदय, कंठ और मूर्धा है। जिसमें हृदय में मन्द्र, कंठ में मध्य तथा मूर्धा में तार उत्पन्न होता है।

नाद का निरूपण करने के पश्चात् पं० शारंगदेव जी ने वर्णन करते हुए कहा है कि हर एक स्थान मे उत्पन्न होने वाले नाद के बाईस प्रकार अर्थात् भेंदों को कहा है, जिन्हें श्रुति

---

(24) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–3/श्लोक–1
(25) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–3/श्लोक–2
(26) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–3/श्लोक–5
(27) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–3/श्लोक–6

कहा गया है। ऐसा कहा जाता है कि हृदयस्थान और ऊर्ध्वनाड़ी (इड़ा–पिंगला और सुषम्णा) से लगी हुयी, 22 नाडियाँ होती है, जो तिरछी आकार की होती है तथा अन्दर से पोली (खोखली) होती है, जिस कारण से उन नाडियों में वायु भरी रहती है और उसमें वायु के आघात द्वारा ध्वनि उत्पन्न होती है, जिससे ऊपर नीचे श्रुतियाँ क्रमशः उत्पन्न होती है।**(28)**

इस तरह से ही कपाल (मस्तिष्क) तथा कण्ठ में भी 22 श्रुतियाँ कही गयी है। इन श्रुतियों को साक्षात अर्थात् स्पष्ट करने हेतु, दो वीणाओं को आधार मान, दोनों वीणाओं को पूर्ण रूप से एक समान ही रखा जाए, जिनसे एक समान ही नादों की प्राप्ती हो। मानव शरीर में जो बाईस नाडियाँ है और उनसे जो श्रुतियाँ उत्पन्न होती है, वह तिरोहति अर्थात् अप्रत्यक्ष है। इस कारण श्रुतियों की गण पूर्ति करने के लिए वीणा पर तारों को स्थापित कर श्रुतियों का प्रत्यक्षीकरण किया गया है, क्योंकि कंठ के द्वारा, जो ध्वनि निकलती है, उस ध्वनि में इतना सूक्ष्म वैषम्य दिखना असंभाव है, क्योंकि कंठ में ध्वनि को स्थिर रखना संभव नहीं है, जिस तरह कसे हुए तारों पर स्थिर रखना सम्भव है। ध्वनियों में अन्तर स्पष्ट करने के लिए दो ध्वनियों का प्रयोग एक साथ केवल वाद्य पर ही अनुमानित है, क्योंकि किसी भी क्रिया को करने के पश्चात् उसे बार–बार दोहराते हुए, बांधना और सही परिणाम मापना ऐसा मात्र केवल तार पर ही संभव है, कंठ से नहीं अतः शास्त्रगत उपयोगों का आधार वीणा को ही रखा है, कठं को नहीं**(29)**

इन दोनों वीणाओं में बाईस–बाईस तारों को स्थापित किया जाए तथा इनमें प्रथम तार को मंद्रतम स्वर में मिलाना चाहिए, दूसरे तार को प्रथम से थोड़ा ऊँचें स्वर में मिलाना चाहिए, इन दोनों तन्त्रियों से उत्पन्न ध्वनियों के मध्य कोई और अन्य ध्वनि न सुनाई दे। इस तरह उसमें निरन्तरता बनी रहें**(30)** यह तन्त्रियाँ क्रम से एक–एक करके एक–दूसरे से ऊँची ध्वनि में मिलाने का वर्णन ग्रन्थकार ने किया है तथा उनमें अविर्भूत नाद को श्रुति कहा है। अतः दोनों वीणाओं पर स्वर स्थापित करने चाहिए। चौथी तार पर षडज जो चार श्रुति का स्वर है उसे रखना चाहिए, उसके बाद पांचवी से तीसरी पर अर्थात् सांतवीं तन्त्री पर

(28) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–3/श्लोक–8–9
(29) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–3/श्लोक–8–10
(30) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–3/श्लोक–10–12

त्रिश्रुति ऋषभ को रखा जाए। उसके बाद नौवीं तन्त्री पर जो आठवीं से दूसरी तार है, उस पर द्विश्रुतिक गंधार स्वर स्थापित किया जाए, उसके बाद दसवीं से चौथी अर्थात् तेरहवीं तार पर चतुश्रुति मध्यम स्वर स्थापित किया जाए और फिर सत्रहवीं तन्त्री पर चार श्रुति का पंचम स्वर उसके पश्चात् बींसवीं तन्त्री पर तीन श्रुति का धैवत स्वर और फिर बाइसवीं तार पर दो श्रुतिक निषाद स्थपित किया जाना चाहिए। पं० शारंगदेव जी द्वारा कहा गया है, कि इसमें एक वीणा चल वीणा तथा दूसरी ध्रुव वीणा कही जाएगी।

विद्वानों द्वारा चल वीणा में सात स्वर उनके मुख्य स्थान से प्रथम तारों को क्रम से अर्थात् तीसरे, छठें, आठवें, बारहवें, सोहलवें, उन्नीसवें और इक्कीसवें तार पर रखना चाहिए। इस तरह से चलवीणा के स्वर ध्रुव वीणा के स्वरों से एक–एक श्रुति नीचें होगें। अन्य सारणा भी इसी प्रकार (अंदाज) में करनी चाहिए। चल वीणा की दूसरी सारणा के गंधार और निषाद दो–दो श्रुतियां नीचें होने से ध्रुव वीणा के ऋषभ और धैवत में बदल जाते है और चल वीणा की तीसरी सारणा के ऋषभ और धैवत ध्रुव वीणा के षड़ज और पंचम में बदल जाते है तथा चौथी सारणा के षड़ज, मध्यम एवम् पंचम के गंधार, निषाद तथा मध्यम में बदल जाते है। इस तरह चारों सारणाओं के फलस्वरूप ध्रुववीणा की श्रुतियाँ, जो चौथी सातवीं, नवीं, तेरहवीं, सत्रहवीं, बीसवीं और बाइसवीं पर स्थापित होती है। यह बाईस श्रुतियों में लीन हो जाने से यह दृश्यमान होता है कि श्रुतियाँ बाईस ही है। इसके पश्चात् ग्रन्थकार ने स्वरों का वर्णन करते हुए कहा है कि स्वर, जो क्रमशः षड्ज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम धैवत तथा निषाद भी श्रुति द्वारा ही यह सात स्वरों की उत्पत्ति होती है। इसके पश्चात् उनके दूसरे रूप में स, रे, ग, म, प, ध, तथा नी की संज्ञा दी है। श्रुति के बाद प्रकट होने वाले नाद को ही स्वर कहा जाता है, जो कि अनुस्वर हो, प्रतिध्वनि हो तथा जिसके द्वारा श्रोताओं के मन में रंजकता उत्पन्न हो वह स्वर कहा जाता है और ऐसा होने पर फिर चौथी सांतवीं आदि श्रुतियां स्वरों की उत्पत्ति का कारक होती है। इससे यह तर्क उत्पन्न होता है कि तृतीय आदि श्रुतियों को स्वर का कारक कहा जाए तो उत्तर में पं० शारंगदेव जी का वर्णन है कि पूर्व की श्रुतियों की गणना हेतु ही चौथी आदि श्रुति का निर्धारण संभव है। अतः पूर्व की श्रुतियां भी स्वर का कारण है।[31] पं० शारंगदेव द्वारा

---

(31) चौधरी सुभद्रा / पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / अध्याय–1 / प्रकरण–3 / श्लोक–24–28

श्रुतियों की जातियों का वर्णन करते हुए श्रुतियों की पांच जाति कही है, जो क्रमशः दीप्ता, आयता, करूणा, मृदु और मध्या।

श्रुति जाति– इसके पश्चात् श्रुति की इन जातियों स्वरों के अनुसार वर्णित किया गया है–

→ षड्ज स्वर हेतु दीप्ता, आयता मृदु तथा मध्या।

→ ऋषभ स्वर हेतु करूणा, मध्या तथा मृदु।

→ गंधार स्वर हेतु दीप्ता तथा आयता।

→ मध्यम स्वर हेतु दीप्ता, आयता मृदु तथा मध्या।

→ पंचम स्वर हेतु मृदु, मध्या, आयता तथा करूणा।

→ धैवत स्वर हेतु करूणा, आयता तथा मध्या।

→ निषाद स्वर हेतु दीप्ता तथा मध्या।

तत्पश्चात् श्रुतियों के नामों के आधार पर श्रुति की जातियों को वर्णित किया गया है, जो इस प्रकार है।

श्रुति जाति	**श्रुति नाम**
1. दीप्ता	तीव्रा, रौद्री, वज्रिका, उग्रा
2. आयता	कुमुदती, क्रोधा, प्रसारिणी, संदीपनी, रोहिणी
3. करूणा	दयावती, आलापिनी, मंदतिका
4. मृदु	मंदा, रतिका, प्रीति, क्षिति
5. मध्या	छंदोवती, रंजनी, मार्जनी, रक्तिका, रम्या, क्षोभिणी

स्वर स्थिती– इसी प्रकार श्रुतियों के नामों साथ स्वरों को वर्णित किया गया है।

स्वर	**श्रुतियों के नाम**
1. षड्ज	तीव्रा, कुमुदती, मंदा, छंदोवती

2.	ऋषभ	दयावती, रंजनी, रक्तिका
3.	गंधार	रौद्री, क्रोधा
4.	मध्यम	वज्रिका, प्रसारिणी, प्रीति, मार्जनी
5.	पंचम	क्षिति, रक्ता, संदीपनी, आलापिनी
6.	धैवत	मंदती, रोहिणी, रम्या
7.	निषाद	उग्रा, क्षोभिणी**(32)**

इसके पश्चात् पं० शारंगदेव जी द्वारा स्वरों के प्रकार बताते हुए, उसके तीन प्रकार स्वीकारे है, जो क्रमशः मन्द्र, मध्य तथा तार कहे गए व विकृत स्थिति में इनके बारह प्रकार कहे है। इनमें षड़्ज द्विश्रुतिक होकर विकृत बन जाता है तथा उसके दो भेंद (च्युत और अच्युत) बनते है। जिस समय निषाद काकली और साधारण में बदल जाए तो षड्ज के दो भेद दिखायी पड़ते है। उसी तरह अगर स्वर साधारण होने की जब ऋषभ षड्ज की अंतिम श्रुति को ग्रहण करता है, तो वह चतुश्रुतिक होता हुआ विकृत कहा जाता है। विकृत गंधार के दो भेद कहे है, उसी में जब मध्यम स्वर के साधारण रूप में जब मध्यम स्वर की पहली श्रुति गंधार स्वर का रूप धारण करती है, तब उसे त्रिश्रुतिक–विकृत समझना चाहिए तथा अन्तर होने पर चतुःश्रुति होते हुए, विकृत कहा जाता है। षडज की तरह मध्यम भी विकृत होकर दो प्रकार का होता है।

मध्यम ग्राम में पंचम त्रिश्रुति विकृत कहलाता है तथा कैशिक अर्थात् मध्यम साधारण में पंचम स्वर मध्यम स्वर की और धैवत मध्यम ग्राम में चतृःश्रुति विकृत होता है। जब षडज साधारण हो और षडज की प्रथम श्रुति को निषाद प्राप्त होता है। तब वह त्रिश्रुति विकृत कहा जाता है और जिस समय काकली होता हुआ दो श्रुति षडज को ग्रहण करता है, तो चतुश्रुति विकृत हो जाता है। इस क्रम से विकृत स्वर के बारह भेद कहे है और सात स्वरों को मिलाकर ग्रनथकार ने उन्नीस स्वर कहे है। इन स्वरों के उच्चारण में पशु पक्षियों का वर्णन करते हुए मोर, चातक, बकरी, कौंच, कोयल, मेंढ़क, तथा हाथी नामक पशु–पक्षियों

(32) चौधरी सुभद्रा / पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / अध्याय–1 / प्रकरण–3 / श्लोक–37–39

को वर्णित किया है। पं० शारंगदेव जी कहते है कि स्वर के चार प्रकार होते है, वादी, संवादी, विवादी तथा अनुवादी। जो स्वर राग में सबसे अधिक प्रयोग हो उसे वादी स्वर के रूप में स्वीकारना चाहिए, तथा जिन दो स्वरों के बीच में आधार श्रुतियों को छोड़कर बारह तथा आठ श्रुतियां हो तो वह स्वर संवादी जाने और निषाद तथा गंधार स्वर अन्य स्वरों के विवादी स्वर कहे जाते है व शेष स्वरों को अनुवादी स्वर कहा जाता है। इनमें वादी स्वर को राजा कहते हुए, संवादी द्वारा उसका अनुसरण करने पर वादी का मन्त्री तथा विवादी उसके विपरीत होने पर शत्रु के समान कहा है और अनुवादी को राजा और मन्त्री का अनुसरण करने हेतु उसे सेवक समझना चाहिए तथा इन स्वरों को कुल को वर्णन करते हुए, षड्ज गंधार तथा पंचम देवताओं के कुल से उत्पन्न पंचम पित् वंश, ऋषभ और धैवत ऋषिकुल उत्पन्न कहे है तथा निषाद को असुर वंश का कहा है। अब उनकी जाति का वर्णन किया है, जिसमें षडज, मध्यम और पंचम को ब्राह्मण, ऋषभ और धैवत को क्षत्रिय, निषद और गंधार वैश्य तथा अन्तर और काकली स्वर शुद्र वर्ण के कहे है तथा इनके रंगों का वर्णन में रक्त, पिंजर, स्वर्ण, कुंद, असित (कृष्ण) वर्ण, पीत (पीला), कर्षुर अर्थात् मिश्रित, इस क्रम में सातों स्वरों के वर्ण कहे है।[(33)]

इसके पश्चात् स्वरों के द्वीपों का वर्णन किया है, जो क्रमशः जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, शाल्कली, श्वेत और पुष्कर। इन द्वीपों से इन स्वरों का जन्म जानना चहिए। अब इन स्वरों के ऋषि कहे है जिसमें षड्ज के ऋषि अग्नि, ऋषभ के ऋषि ब्रह्म, गंधार के ऋषि चन्द्रमा, मध्यम के ऋषि विष्णु, पंचम के ऋषि नारद, तम्बुरू ऋषि को धैवत तथा निषाद के ऋषि के रूप में स्वीकारा गया है। इसी क्रम में देवताओं को बताते हुए कहा है कि षड्ज के देवता अग्नि, ऋषभ के देवता ब्रह्मा, गंधार के देवता सरस्वती, मध्यम के देवता महादेव, पंचम के देवता विष्णु, धैवत के देवता गणेश तथा निषाद के देवता सूर्य है। फिर छंद का वर्णन करते हुए कहा है कि षडज का छंद अनुष्टुप, ऋषभ का छंद गायत्री, गंधार का छंद त्रिष्टुप, मध्यम का छंद बृहती, पंचम का छंद पंक्ति, धैवत का छंद अष्णिक और निषाद का छंद जगती कहा है। इस प्रकार स्वरों में छंदों को मानना चाहिए। स्वरों के रसों को व्यक्त करते हुए कहा है कि–

---

(33) चौधरी सुभद्रा / पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / अध्याय–1 / प्रकरण–3 / श्लोक–46–59

	स्वर	रस
1.	षड्ज तथा ऋषभ	वीर, अद्भुत तथा रौद्र
2.	गंधार तथा निषाद	करूण
3.	मध्यम तथा पंचम	हास्य तथा श्रृंगार
4.	धैवत	वीभत्स तथा भयानक

इस प्रकार पं० शारंगदेव जी द्वारा लक्षणों को व्यक्त किया गया है।

3.5.1.4 ग्राम, मूर्च्छना, मूर्च्छना क्रम, तान प्रकरण

इसके बाद ग्रन्थकार ने प्रथम अध्याय के चौथे प्रकरण में ग्राम, मूर्च्छना, मूर्च्छना क्रम, तान प्रकरण को वर्णित किया है, जिसमें ग्राम का वर्णन करते हुए, पं० शारंगदेव जी द्वारा कहा गया कि–

ग्रामः स्वरसमूहः स्यान्मूर्च्छनादेः समाश्रयः।[(34)]

अर्थात्– मूर्च्छना आदि का अवलंब स्वरसमूह ग्राम कहा जाता है।

ग्राम शब्द को लोक जीवन से लिया गया है। उसी के लिए सिंहभूपाल तथा कल्लिनाथ जी भी कहा है कि जिस तरह से जहाँ लोक में जन समूह का बसेरा हो उसे ग्राम कहा जाता है। उसी प्रकार जिसमें स्वरसमूह प्रतिपादित हो उसे भी ग्राम कहा जाता है। यहाँ मूर्च्छना आदि का अर्थ है, जिसमें मूर्च्छना उसका क्रम, तान, वर्ण अलंकार जाति सभी कुछ आदि रूपों में स्वर समूह सुस्पष्ट होता है तथा उन सभी तथ्यों को ग्रहण करना ग्राम का विशेष लक्षण है। लोक व्यवहार में ग्राम के दो भेद कहे है–षड्जग्राम और मध्यमग्राम। पं० शारंगदेव जी द्वारा मूर्च्छना के लक्षण वर्णित करते हुए कहा है, कि जब पंचम अपनी चौथी श्रुति पर स्थित हो तो षडज ग्राम कहा जाता है और जब षडज तीसरी श्रुति पर हो तो मध्यमग्राम माना जाता है अर्थात् त्रिश्रुति धैवत षडजग्राम और चतुःश्रुति धैवत मध्यम ग्राम का होता है।[(35)] इसके अतिरिक्त जिस समय गंधार, ऋषभ, तथा मध्यम की एक–एक श्रुति

---

(34) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–4/पृ०–12
(35) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–4/श्लोक–1–3

ग्रहण करते है और पंचम तथा निषाद, धैवत और षडज की एक–एक श्रुति ग्रहण करें तब गंधार ग्राम कहा जाता है। जिसे महर्षि नारद ने बताया है कि यह स्वर्गलोक में विद्यमान है, भूलोक पर नहीं है। षडज स्वर मौलिक तथा मुख्य स्वर है तथा इसके संवादी स्वरों में अधिकता है। मध्य स्वर अपरिवर्तनीय है, इसके षाडव, औडव में लोप नहीं है।

गंधार देव कुल में उत्पन्न होने के कारण उसे स्वर्गलोक में स्वरों का प्रधान (नायक) माना गया है अर्थात् षडज मध्यम और गंधार यह तीन ग्राम है तथा तीनों के देवता ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश माने गए है। अपनी मंगलकामना चाहने वाले इन्सान (व्यक्ति) को इन्हें हेमन्त, ग्रीष्म, और वर्षा के पूर्वाह तथा अपरान्ह मे इनका गान यथाक्रम करना चाहिए। इसके पश्चात् मुर्च्छना का वर्णन पं० शारंगदेव जी द्वारा किया गया है कि मूर्च्छना सात स्वरों के कर्म अनुसार आरोह–अवरोह को कहते है।**(36)** दोनों ग्रामों में (षडज, मध्यम) सात–सात मूर्च्छनाएं होती है।**(37)** इनका वर्णन करते हुए षडजग्राम की मूर्च्छना इस प्रकार कही है– **पहली–** उत्तरमंद्रा, **दूसरी–**रंजनी, **तीसरी–**उतरायता, **चौथी–**शुद्धषडजा, **पांचवीं–**मत्सरीकृता, **छठी–**अश्वक्रान्ता तथा **सातवीं–**अभिरूद्गता। इसी प्रकार मध्यम ग्राम की मूर्च्छना का भी वर्णन किया गया है–**पहली–**सौवरी, **दूसरी–**हारिणाश्वा, **तीसरी–**कलोपनता, **चौथी–**शुद्धमध्या, **पंचवी–**मार्गी, **छठी–**पौखी और **सांतवीं–**हश्यका।**(38)**

इसके पश्चात् तान का वर्णन करते हुए पं० शारंगदेव जी ने कहा है कि शुद्ध मूर्च्छनाओं के षाडव और औडव में होने पर शुद्ध तानों का अविर्भाव होता है। यदि षडज ग्राम ही मूर्च्छनाएं क्रमानुसार षडज, ऋषभ, पंचम तथा निषाद से रहीत हो जाए तो ताने 28 हो जाएगीं और जब मध्यम ग्राम में क्रम से सात मूर्च्छनाएं षडज, ऋषभ तथा गंधार से रहित हो तो इक्कीस ताने होती है। दोनों ग्रामों की कुल षाडव तानें उन्तालिस होती है।**(39)** इस प्रकार से औडव तानें भी कही है कि जब षडज ग्राम में मूर्च्छनाएं षडज–पंचम, गंधार–निषाद, तथा ऋषभ–पंचम से रहित हो जाए तो इक्कीस औडव तानें बनती है। इसी तरह मध्यग्राम की मूर्च्छनाएं जब ऋषभ–धैवत तथा गंधार–निषाद से हीन हो तो औडव की

---

(36) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–4/श्लोक–6–8
(37)चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–4/श्लोक–9
(38) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–4/श्लोक–10–11
(39) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–4/श्लोक–27–28

चौदह ताने बनेगी। इस क्रम से औडव की ताने दोनों ग्रामों में कुल पैंतिस है व दोनों औडव–षाडव मिलाकर 84 तानें होंगी।[40]

क्रम से यदि सम्पूर्ण और असम्पूर्ण तानों को विस्तार से कहा जाए, जो प्रत्येक मूर्च्छना से सम्पूर्ण कूट तान को प्राप्त संख्या 5040 होगी और यदि 5040 कूटतान × 56 मूर्च्छना करे तो प्राप्त फल 282240 होगा। इसी प्रकार षडज व मध्यम ग्राम के आधार पर प्राप्त मूर्च्छनाओं से यदि एक–एक स्वर का लोप किया जाए तो षाडव के प्रस्तार से 720 औडव प्रस्तार द्वारा 120 प्रकार प्राप्त होते है। इसी आधार पर एक स्वर के प्रस्तार से प्राप्त एक स्वर से युक्त प्रस्तार को आर्चिक, दो स्वरों से युक्त प्रस्तार गाथिक, तीन स्वरों से यक्त प्रस्तार सामिक व चार स्वरों से युक्त प्रस्तार को स्वरांतर कहा गया है। षाडव के 720 भेद × 48 मूर्च्छना तो 34560 तानों की प्राप्ती होती है। औडव भेद छः वर्णित करते हुए उसके चार प्रकार कहे गए है व कुल औडव भेदों की संख्या चालिस कही है। इस प्रकार 120×40 करने पर 4800 औडव भेद प्राप्त होते है। स्वरांनर के अर्न्तगत चार भेद कहे है व अन्य 12 भेद के दो प्रकार होते है। इस प्रकार इनकी सख्यां बत्तिस कही है। इसी प्रकार सामिक, गाथिक व आर्चिक के भेदों व प्रकारों का वर्णन विस्तार से पं० शारंगदेव जी द्वारा किया गया है। इसी प्रकार प्रत्येक मूर्च्छना के अर्न्तगत विभिन्न तानों को विस्तार से वर्णन स्वरों के आधार पर व षाडव, औडव जैसी जातियों के आधार पर किया है।[41]

प्रस्तार एवम् प्रस्तार सिद्धान्त

प्रस्तार को सर्वप्रथम वर्णित करते हुए, पं० शारंगदेव जी द्वारा प्रस्तार के विषय में वर्णन प्रस्तुत किया गया है कि स्वरों को क्रम से न रखते हुए, उन्हें प्रस्तार के अनुसार अर्थात् स्वरों को नवीन रूपों में प्रस्तुत करना ही प्रस्तार कहा गया है। विस्तार से समझाते हुए पं० शारंगदेव जी द्वारा कहा गया है कि मान ले– स, रे, ग, म इन चार स्वरों से प्रस्तार की क्रिया की जानी है, जो पहले स्वर के नीचे एक बिन्दु रखेंगें – स़ रे ग म इसे विस्तार से समझाने हेतु इस प्रकार भी कहा जा सकता है–

---

(40) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–4/श्लोक–29–30
(41) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–4/श्लोक–32–61

स़ रे ग म

स ग म

रे स ग म

इस प्रकार एक प्रस्तार की रचना सम्भव हो गयी। इसी क्रम में

स़ रे ग म **प्रथम प्रस्तार**

स ग म

रे स ग म **द्वितीय प्रस्तार**

रे़ स़ ग म

रे म

स ग रे म **तृतीय प्रस्तार**

स़ ग रे म

स रे म

ग स रे म **चतुर्थ प्रस्तार**

रे ग स म

ग रे स म **इसी क्रम में पंचवां, छठा**

स रे म ग **सांतवां प्रस्तार कहा है।**

इस प्रकार चार स्वरों के आधार पर 24, पांच स्वरों से 120 छः स्वरों द्वारा 720 व सातों स्वरों के आधार पर 5040 स्वर–प्रस्तारों की रचना सम्भव है।[(42)]

(42) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–4/श्लोक–62–63

खण्ड़मेरू– पं० शारंगदेव जी द्वारा खण्ड़मेरू[43] को विस्तार से इस प्रकार समझा जा सकता है–

स	रे	ग	म	प	ध	नी
1	0	0	0	0	0	0
	1	2	6	24	120	720
		4	12	48	240	1440
			18	72	360	2160
				96	480	2880
					600	3600
						4320

यदि इस खण्डमेरू की आकृति को ध्यानपूर्वक अध्ययन करे तो स्वरों को किस प्रकार खण्डित किया जा सकता है, उसे देख सकते है प्रस्तुत आकृति के अनुसार सबसे पहले पहली पंक्ति के सातों स्वरों को क्रमवार रखते हुए, उसमें से षडज स्वर पर 1 की सख्या को अंकित करते हुए अन्य छः स्वरों के नीचें शून्य अंकित किया जाएगा। तत्पश्चात् इस आकृति में जैसे–जैसे नीचे की ओर जाएगें अर्थात् ऊंचे स्वरों की ओर जाते जाएगें एक–एक स्वर का परित्याग होता जाएगा। अब पहली पंक्ति के षडज के नीचें 1 के पश्चात् ऋषभ के नीचे पुनः 1 संख्या को अंकित करेगें और षडज और ऋषभ का योग करते हुए अर्थात् 1+1–2 व प्राप्तांक को गंधार के नीचें अंकित किया जाएगा। इसे अब प्राप्ताकं को दो गुना कर चौथी पंक्ति के गंधार के नीचे इसे अंकित करें, इसी क्रम में तीनों पहली पंक्तियों की संख्याओं का योग करे अर्थात् 1+1+4 व प्राप्तांक 6 को दूसरी पंक्ति स्थित मध्यम के नीचे के रिक्त स्थान पर रखें व इसको दो गुनाकर अर्थात् 12 को तीसरी पंक्ति में मध्यम के नीचे सीापित करें।

इसी प्राप्तांक अर्थात् छः को तीन गुना 18 कर चौथी पंक्ति के पहले खने में स्थान दें। अब पूर्व की ही भांति सभी पहले कोष्ट को का योग करें अर्थात् 1+1+4+18 के प्राप्तांक 24 को

(43) गर्ग लक्ष्मीनारायण/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–4/पृ०–46

दूसरी पंक्ति के पंचम के नीचे स्थित करें व इसका दो गुना 48 को तीसरी पंक्ति के तीसरे खाने में रखें व तीन गुने 72 को चौथी पंक्ति के दूसरे खाने में रखें व चौगुना कर पांचवीं पंक्ति के पहले खाने में रख पूर्व की भांति पुनः 1+1+4+18+96 से प्राप्तांक 120 को दूसरी पंक्ति के धैवत के नीचें के रिक्त स्थान पर रखें व क्रमशः दो गुना 240 तीसरी पंक्ति के चौथे कोष्टक में, इसका तीन गुना 360 चौथी पंक्ति के तीसरे कोष्टक में व चौगुना करके 480 को पांचवीं के दूसरे कोष्टक में व पांच गुना 600 को छठी पंक्ति के पहले कोष्टक में रखें व पहली पंक्ति से छठी पंक्ति तक के सभी पहले कोष्टक को योग कर 720 को निषाद के नीचे लिखें व इसी के क्रम दो गुना 1440, तीन गुना 2160, चार गुना 2880, पांच गुना 3600, छः गुना कर अन्तिम कोष्टक के सांतवीं पंक्ति स्थापित करें। इस प्रकार खण्डमेरू को पूर्ण विस्तार के साथ पं० शारंगदेव जी द्वारा कहा गया है।[(44)] पं० शारंगदेव जी द्वारा तानों के प्रकारों नामों का उल्लेख प्रस्तुत किया है, जिसमें प्रत्येक स्वर के अर्न्तगत सात–सात तान कहे है। सर्वप्रथम षडजग्राम के तानों के नाम इस प्रकार है–

षडजहीन तानों– **1.** अग्निष्टोम, **2.** अत्यग्निष्टोम, **3.** वाजपेय, **4.** षोडशी, **5.** पुडंरीक, **6.** अश्वमेघ, **7.** राजसूय।

ऋषभहीन तान– **1.** स्विष्टकृत्, **2.** बहुसौवर्ण, **3.** गोसव, **4.** महाव्रत **5.** विश्वजित् **6.** ब्रह्मयज्ञ, **7.** प्राजापत्य।

पंचमहीन तान– **1.** अश्वक्रांत **2.** रथक्रांत **3.** विष्णुक्रांत, **4.** सूर्यक्रांत, **5.** गजक्रांत **6.** वलभित् **7.** नागपक्ष।

निषादहीन तान– **1.** चातुर्मास्य, **2.** सस्था, **3.** शस्त्र, **4.** उक्थ, **5.** सौत्रामणी, **6.** चित्रा, **7.** उद्भित्,।

षडजपंचमहीन तान– **1.** इडा, **2.** पुरूषमेध, **3.** श्येन, **4.** वज्र, **5.** इषु, **6.** अंगिरा, **7.** कंक,।

निषादगांधार तान– **1.** ज्योतिष्टोम, **2.** दर्श, **3.** नान्दी, **4.** पौर्णमासक, **5.** अश्वप्रतिग्रह, **6.** रात्रि, **7.** सौभर,।

---

(44) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–4/श्लोक–63–70

पंचमऋषभ तान– **1.** सौभाग्यकृत, **2.** कारीरी, **3.** शांतिकृत्, **4.** पुष्टिकृत्, **5.** वैनतेय, **6.** उच्चाटन, **7.** वशीकरण,।

मध्यमग्राम के अर्न्तगत तानों के प्रकार इस प्रकार है–

षडजहीन तानों– **1.** सावित्री, **2.** अर्द्धसावित्री, **3.** सर्वतोभद्र, **4.** आदित्यायन, **5.** गवायन, **6.** सर्पायन, **7.** कौणपायन,।

ऋषभहीन तान– **1.** अग्निचित्, **2.** द्वादशाह, **3.** उपांशु, **4.** सोम, **5.** अश्वप्रतिग्रह, **6.** बर्हि, **7.** अभ्युदय।

गांधारहीन तान– **1.** सर्वस्वदक्षिण, **2.** दीक्षा, **3.** सोम, **4.** समित्, **5.** स्वाहाकार, **6.** तनूनपात्, **7.** गोदोहन।

ऋषभधैवतहीन तान– **1.** त्रैलोक्यमोहन, **2.** वीर, **3.** कंदर्पबलशातन, **4.** शंखचूड, **5.** गजच्छाय, **6.** रौद्र, **7.** विष्णुविक्रम।

निषादगांधारहीन तान– **1.** भैरव, **2.** कामद, **3.** अवभृथ, **4.** अष्टकपाल, **5.** स्विष्टकृत्, **6.** वषट्कार, **7.** मोक्षद,।

इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय के अर्न्तगत पं० शारंगदेव जी द्वारा ग्राम, मूर्च्छना, मूर्च्छना क्रम, तान नाम प्रकरण के अर्न्तगत समस्त लक्षण आदि को विस्तार से कहा है।

3.5.1.5 साधारण प्रकरण

प्रस्तुत प्रकरण के अर्न्तगत साधारण के विस्तार से कहा गया है जिसमें साधारण के दो भेदों का उल्लेख किया गया है जिसमें स्वरसाधारण व जातिसाधारण। इसके अर्न्तगत स्वरसाधारण के चार भेद कहे है– **काकली साधारण, अन्तरसाधारण, षडजसाधारण** व **मध्यम साधारण**। काकली साधारण षडज तथा निषाद के मध्य स्थित होता है। अन्तरसाधारण गंधार व मध्यम के मध्य स्थित होता है व षडज को उच्चारित करने के पश्चात् काकली व धैवत को उच्चारित करना चाहिए व मध्यम के पश्चात गंधार व ऋषभ को उच्चारित किया जाता है। मध्यम व अन्तर स्वरों को उच्चरित कर मध्यम को धारण किया जाता है। तत्पश्चात् अन्य स्वरों को ग्रहण किया जाता है, काकली व अन्तर स्वर को

अल्प रूप में प्रयोग किया जाता है। जब निषाद को षडज की प्रथम श्रुति पर रखा जाए और ऋषभ को आखरी श्रुति पर रखा जाए तो वह षडज साधारण कहा जाता है। इसी प्रकार गंधार जब मध्यम की प्रथम श्रुति पर हो और पंचम आखरी श्रुति पर स्थापित हो तो उसे मध्यम साधारण कहा जाता है। षडज व मध्यम साधारण के संयोग को कैशिक कहा जाता है। जाति साधारण को वर्णित करते हुए कहा है कि जब आर्यो द्वारा किसी एक ग्राम के अर्न्तगत जिन एक जैसे स्वरों की उत्पत्ति को ही जाति साधारण कहा गया है।[45]

3.5.1.6 वर्णालंकार प्रकरण

संगीत में गान के अर्न्तगत होने वाली क्रिया को ही वर्ण की संज्ञा दी गयी है तथा वर्ण के चार प्रकार– स्थायी, आरोही, अवरोही व संचारी कहा है। प्रत्येक स्वर को रूक–रूक कर निश्चित काल में उच्चारण किया जाता है, उसे स्थायी वर्ण कहा जाता है। जब स्वरों को आरोह क्रम में उच्चारित करें तो वह आरोही वर्ण कहा जाता है व इसी के विपरीत अवरोह में स्वरों के उच्चारण को अवरोही वर्ण कहा गया है तथा जब स्थायी, आरोही, अवरोही के वर्णों को संयुक्त रूप में प्रयोग किया जाए तो उसे संचारी वर्ण कहा गया है।[46]

वर्ण के विशेष समूहों को अलंकार की संज्ञा दी गयी है। प्रत्येक अलंकार के वर्णन के अर्न्तगत प्रथम स्वर को मंद्र स्वर कहा गया है तथा उसी के दोगुने स्वर को तार स्वर कहा गया है।[47]

स्थायी वर्ण के अलंकारों की संख्या सात[48] कही है जो कि इस प्रकार है–

प्रसन्नादि अलंकार– क्रम से प्रत्येक में दो बार मंद्र स्वर व एक बार तार स्वर को प्रस्तुत करने को प्रसन्नादि अलंकार कहा है। जैसे– सं सं ।स ....

प्रसन्नांत अलंकार– प्रसन्नादि अलंकार को विपरीत करने पर प्रसन्नांत अलंकार कहा जाता है। जैसे– ।ससं सं.....

---

(45) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–5/श्लोक–1–10
(46) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–6/श्लोक–1–2
(47) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–6/श्लोक–3–8
(48) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–6/श्लोक–8–13

प्रसन्नाद्यान्त अलंकार– जब दो प्रसन्नादि अलंकारों के मध्य एक तार स्वर हो तो उसे प्रसन्नाद्यान्त अलंकार कहा जाता है। जैसे– सं ।स सं....

प्रसन्नमध्य अलंकार– जब दो तार स्वरों के मध्य एक मन्द्र स्वर हो उसे प्रसन्नमध्य अलंकार कहा गया है। जैसे– ।स सं।स

क्रमरेचित अलंकार– एक ही अलंकार के अर्न्तगत तीन प्रकार की कलाओं को प्रयोग किया गया है। जिसमें प्रत्येक स्वर समूह के अन्त में प्रथम स्वर को स्थान दिया जाता है। जैसे– संरेसं, संगमसं, संपधनीसं....

प्रस्तार अलंकार– जब कलाओं के अन्त में अन्य पूर्व स्वरों को रखा जाए, उसे प्रस्तार कहा जाता है। जैसे– संरेसं, संगम।स....

प्रसाद अलंकार– आरम्भ में तार स्वर व अंतिम स्वर मन्द्र कहा है, उसे प्रसाद अलंकार कहा गया है। जैसे– सरेसं, ।सगमसं.....

आरोही वर्ण के अलंकार की संख्या बारह[(49)] कही है। जो कि इस प्रकार है–

विस्तीर्ण अलंकार– क्रम से प्रत्येक स्वर पर रूकते हुए, आरोह में प्रस्तुत करना विस्तीर्ण अलंकार कहा गया है। जैसे– स, रे, ग, म, प.....

निष्कर्ष अलंकार– गात्रवर्ण को निष्कर्ष अलंकार कहा गया है, जिसमें प्रत्येक स्वर का उच्चारण दो–दो, तीन–तीन या चार–चार बार किया जाता है। उसे ही निष्कर्ष अलंकार कहा जाता है। जैसे– ससस, रेरेरे, गगग या सससस, रेरेरेरे, गगगग, मममम....

बिन्दु अलंकार– क्रम से प्रत्येक स्वर के मध्य प्लुत ह्रस्व का प्रयोग करते हुए आरोह हो उसे बिन्दु अलंकार कहा जाता है। जैसे– स३रे, ग३म, प३ध, नी३.....

अभ्युच्चय अलंकार– क्रम से एक–एक स्वर को छोडते हुए प्रयोग किया जाए उसे अभ्युच्चय अलंकार कहा जाता है। जैसे– सगपनी.....

---

(49) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–6/श्लोक–13–25

हसित अलंकार– सप्तक के स्वरों का उनके क्रम स्थान के अनुसार ही प्रस्तुत किया जाए उसे ही हसित अलंकार कहा गया है। जैसे स, रेरे, गगग, मममम, पपपपप.....

प्रेंखित अलंकार– जब क्रम से प्रथम, द्वितीय प्रथम द्वितीय क्रम में गान हो उसे प्रेंखित अलंकार कहा गया है। जैसे– सरे रेग गम मप.....

आक्षिप्त अलंकार– जब प्रथम व तृतीय स्वर का उच्चारण करते हुए, इसी क्रम में प्रथम, तृतीय, प्रथम, तृतीय के जोड़े को गाया जाए जो वह आक्षिप्त अलंकार कहा जाता है। जैसे– सग, गप, पनी.....

संधिप्रच्छादन अलंकार– तीन–तीन स्वर समूह में सप्तक के तीन स्वरों का आरोह व अवरोह किया जाए वह संधिप्रच्छादन अंलकार कहा गया है। जैसे सरेग, गमप....

उद्गीत अलंकार– जहाँ पाँच स्वर समूह में सप्तक के तीन स्वरों के साथ प्रथम स्वर को तीन बार प्रयोग कर वह उद्गीत कहा है। जैसे– ससससरेग, मममपध.....

उद्वाहित अलंकार– पांच स्वर के समूह में जब सप्तक के तीन स्वरों का प्रयोग करते हुए, प्रथत व तृतीय स्वर के मध्य दूसरे स्वर को तीन बार प्रस्तुत किया जाए वह उद्वाहित अलंकार कहा जाता है। जैसे– सरेरेरेग, मपपपध....

त्रिवर्ण अलंकार– पांच स्वरों का वह समूह जिसमें पहले, दूसरे स्वर के बाद तीसरे स्वर को तीन बार प्रस्तुत किया जाए, उसे त्रिवर्ण अलंकार कहा जाता है। सरेगगग, मपधधध....

वेणि अलंकार– तीन स्वरों के समूह की वह कला जिसके प्रत्येक खण्ड में समान ही स्वरों का प्रयोग हो वह वेणि अलंकार कहा जाता है। जैसे– ससस, रेरेरे.....

संचारी वर्ण के अलंकारों की संख्या पच्चीस[(50)] कही है, जो कि इस प्रकार है–

मंदादि अलंकार– तीन स्वरों का समूह जिसमें पहले और दूसरे के मध्य तीसरा स्वर अपना स्थान प्राप्त करें उसे मंद्रादि अलंकार कहा जाता है। जैसे–सगरे, रेमग...

---

(50) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–6/श्लोक–26–53

मंद्रमध्य– जब तीन स्वरों के समूह में पहले स्वर के स्थान पर तीसरा स्वर और दूसरे स्वर के स्थान पर पहला स्वर हो उसे मंद्रमध्य अलंकार कहा जाता है। जैसे– गसरे, मरेग,

मंद्रन्त अलंकार– जब तीन स्वरों के समूह में दूसरा स्वर पहले स्थान पर और पहला स्वर तीसरे स्वर के स्थान पर विराजमान हो तो उसे मंद्रान्त अलंकार कहा जाता है। जैसे– रेगस, गमरे...

प्रस्तार अलंकार– प्रथम तथा तृतीय स्वर का जोड़ा बनाते हुए, गान प्रस्तुत हो उसे प्रस्तार अलंकार कहा जाता है। जैसे– सग, रेम, गप...

प्रसाद अलंकार– तीन–तीन स्वरों के समूहों में जब पहले स्वर को आरम्भ और अन्त में स्थान दिया जाए, वह प्रसाद अलंकार कहा जाता है। जैसे–सरेस, रेगरे...

व्यावृत्त अलंकार– प्रथम, तृतीय, द्वितीय चतुर्थ स्वरों के समूह में प्रथम स्वर पद अन्त हो उसे व्यावृत्त अलंकार कहा जाता है। जैसे– सगरेमस, रेमगपरे....

स्खलित अलंकार– मंद्रादि अलंकार में जब आगे वाले स्वरों का उच्चारण दो बार हो उसे स्खजित अलंकार के रूप में व्यक्त किया है। जैसे– सगरेममरेगस, रेमगपपगमरे...

परिवर्त अलंकार– तीन–तीन स्वरों के खण्डों में दूसरे स्वर को त्याग करते हुए, प्रथम, तृतीय व चतुर्थ स्वर का गान परिवर्त अलंकार कहा जाता है। जैसे– सगम, रेमप

आक्षेप अलंकार– तीन स्वरों के खण्ड़ को आरोह में प्रस्तुत कर आक्षेप अंलकार कहा है। जैसे– सरेग, रेगम.....

बिन्दु अलंकार– प्रथम स्वर को प्लुत करके प्लुत अर्थात् तीन मात्रा, फिर दूसरे, तीसरे स्वर को गाकर पुनः पहले स्वर पर आना बिन्दु कहा है। जैसे–स३रेगस, रे३गमग....

उद्वाहित अलंकार– तीन–तीन स्वरों के आधार पर चार स्वर खण्ड़ के अलंकार को उद्वाहित अलंकार कहा है, जिसमें आरोह में प्रथम स्वर से आरम्भ करते हुए, तीसरे स्वर के पश्चात् प्रथम को प्रयोग किया जाता है। जैसे– सरेगस, रेगमरे....

ऊर्मि अलंकार– पहले व चौथे स्वर में प्लुत करते हुए, पुनः पहले चौथे स्वर को उच्चारित करना ऊर्मि अलंकार कहा है। जैसे– सम३ सम, रेप३ रेप....

सम अलंकार– चार–चार स्वरों के समूहों का आरोह व अवरोह में प्रस्तुतीकरण सम अलंकार कहा जाता है। जैसे– सरेगम मगरेस...

प्रेंख अलंकार– जब पहले स्वर का एक बार गाते हुए, दूसरे स्वर को पुनः पहले स्वर को प्रस्तुत करना प्रेंख अलंकार कहा जाता है। जैसे–सरेरेस, रेगगरे...

निष्कूजित अलंकार– प्रसाद अंलकार के अनुसार, जिस अलंकार में क्रम से पहले–दूसरे, पहले–तीसरे पुनः पहले स्वर का गान हो वह निष्कूजित अलंकार कहा है।

श्येन अलंकार– जब पहले और पांचवें स्वर के क्रम में उसे प्रस्तुत किया जाए, वह श्येन अलंकार कहा जाता है। जैसे– सप, रेध, गनी....

क्रम अलंकार– प्रस्तुत अलंकार में क्रम से दो, तीन तथा चार स्वर को आरोह में प्रस्तुतीकरण किया जाता है, उसे ही क्रम अलंकार कहा गया है। जैसे– सरे सरेग सरेगम, रेग रेगम रेगमप.....

उद्घट्टित अलंकार– क्रम से दो स्वरों के उच्चारण के पश्चात् पांचवें स्वर से अवरोही क्रम में प्रयोग करना उद्घट्टित अलंकार कहा जाता है। जैसे–सरे पमगरे, रेग धपमग...

रंजित अलंकार– तीन–तीन स्वरों में खण्डों में चतुर्थ मंद्र स्वर जोडते हुए, रंजित अलंकार का सृजन होता है। जैसे–सगरे सगरेस, रेमग रेगमरे...

संनिवृत्तप्रवृत्तक अलंकार– जब प्रथम और पंचम स्वर के खण्ड के पश्चात् द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ स्वर का प्रस्तुतीकरण अवरोही क्रम में हो तो वह संनिवृत्तप्रवृत्तक अलंकार कहा जाता है। जैसे– सप मगरे, रेध पमग...

वेणु अलंकार– प्रस्तुत प्रथम स्वर को दो बार प्रस्तुत करते हुए, द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ स्वर को गाए जाने के निर्मित हो उसे वेणु अलंकार कहा है। जैसे– सस रेगम, रेरे गमप....

ललितस्वर अलंकार– आरम्भिक दो स्वरों के पश्चात् चौथे स्वर का प्रयोग हो, और दो पूर्व के स्वरों को अवरोह में गान किया जाए, वह ललितस्वर अलंकार कहा है। जैसे– सरेमरेस, रेगपगरे....

हुंकार अलंकार– वह अलंकार जिसमें एक–एक स्वर की बढ़त के साथ आरोह व अवरोह मे द्विस्वरादि कला को प्रयोग किया जाए वह हुंकार अलंकार कहा है। जैसे सरेगमपधपमगरेस, सरेगमपधनीधपमगरेस।

ह्रादमान अलंकार– प्रसन्नान्त कला के अर्न्तगत मंद्र व अन्य स्वरों के प्रयोग को ह्रादमान अलंकार कहा है। जैसे–सगरेस, रेमगरे.....

अवलोकित अलंकार– वह अलंकार जिसके आरोह तथा अवरोह में दूसरे स्वर को छोड दिया जाए, वह अवलोकित अलंकार कहा है। जैसे–सगममरेस, रेमपपगरे.....

गीतज्ञ वर्ण के अलंकारों की संख्याा सात(51) कही है जो कि इस प्रकार कहे है–

तारमंद्रप्रसन्न अलंकार– तार सप्तक के पहले स्वर के बाद आरोह में मंद्र से स्वरों को रखा जाए वह तारमंद्रप्रसन्न अलंकार कहा गया है। जैसे–संरेगमपधनीस'सं.....

मंद्रतारप्रसन्न अलंकार– वह अलंकार तारमंद्रप्रसन्न का ही रूप है, जिसमें सर्वप्रथम तार सप्तक का प्रथम स्वर के पश्चात् मद्रं सप्तक के स्वरों का अवरोह गान हो, उसे मंद्रतारप्रसन्न अलंकार कहा है। जैसे– सां'नीधपमगरेसं.....

आवर्तक अलंकार–वह अलंकार जिसमें पहला स्वर और दूसरा स्वरों को दो–दो बार गान कर दूसरा और पहला स्वर गाया जाए उसे आवर्तक अलंकार कहा है, जैसे–ससरेरेससरेस, रेरेगगरेरेगरे.....

संप्रदान अलंकार–जब आवर्तक अलंकार में ही दो स्वर को छोडकर कलाओं को प्रस्तुत किया जाए वह संप्रदान अलंकार कहा है। जैसे– ससरेरेसस, रेरेगगरेरे....

विधूत अलंकार– वह अलंकार जिसमें एक स्वर को छोड़ते हुए जोडें में गान करे व जिस स्वर को छोडा है उससे ही आरंभ करते हुए आगे बढा जाए उसे विधूत अलंकार कहा है। जैसे–सगसग, रेमरेम.....

---

(51) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–6/श्लोक–54–64

उपलोल अलंकार– जब कला के आरम्भ के स्वरों के जोड़ें को दो बार गाए जाने के बाद तीसरे व दूसरे स्वर को पुनः जोड़ें से गाए जाने वाला अलंकार उपलोल अलंकार कहा जाता है। जैसे– सरेसरेगरेगरे, रेगरेगमगमग.....

उल्लासित अलंकार– वह अलंकार जिसमें कला के आरम्भिक स्वर का गान दो बार प्रस्तुत किया जाए तत्पश्चात् तीसरे पहले व पुनः तीसरे स्वर को गाया जाए, उसे ही उल्लासित अलंकार की संज्ञा दी गयी है। जैसे ससगसग, रेरेमरेम.....

पं० शारंगदेव जी द्वारा सात स्थायी, बारह आरोही, बारह अवरोही, पच्चीस संचारी व सात अन्य अर्थात् तैंसठ अलंकारों को वर्णित किया है। इन अलंकारों की सख्या पं० शारंगदेव जी द्वारा अनन्त कही गयी है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय के वर्णालंकार प्रकरण के अर्न्तगत वर्णों तथा अलंकार का विस्तृत वर्णन पं० शारंगदेव जी द्वारा दिया गया है।

3.5.1.7 जाति प्रकरण

संगीत रत्नाकर के प्रथम अध्याय के सप्तम प्रकरण को जाति प्रकरण के नाम से सम्बोधित करते हुए, जाति व्यवस्था को विस्तृत रूप से वर्णित किया गया है। शुद्ध जातियों की संख्या सात कही गयी है, जो षडज, ऋषभ आदि स्वरों से सुशोभित है। नाम के अनुसार ही सभी में अंश, न्यास, अपन्यास आदि स्वरों को स्थान दिया गया है, उन्हें शुद्ध जाति व जो कुछ लक्षणों से रहित हो उन्हें विकृत जाति के अर्न्तगत स्थान दिया गया है। न्यास अपन्यास आदि में एक–एक के त्याग द्वारा विकृत जाति के अर्न्तगत चार भेद व दो–दो का त्याग करने पर छः भेद प्राप्त होते है। इस प्रकार एक–एक कर त्याग करने की प्रक्रिया के अनुसार षडजी जाति के पन्द्रह विकृत भेदों को पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्णित किया गया है। पं० शारंगदेव जी द्वारा ग्यारह विकृत जातियों का वर्णन प्रस्तुत किया है जो आपसी संयोग द्वारा निर्मित हुए है–

1. षाडजी + गंधारी– षडजकैशिकी
2. षाडजी+ मध्यमा– षडजमध्यमा

3. गंधारी+ पंचमी–	गांधारीपंचमी
4. गंधारी+आर्षभी–	आंध्री
5. षाडजी+ धैवती+गांधारी–	षडजोदीच्यवती
6. नैषादी + पंचमी + आर्षभी–	कार्मारवी
7. गंधारी + पंचमी + आर्षभी–	नंदयंती
8. गांधारी + धैवती + षाडजी +मध्यमा –	गांधारोदीच्यवा
9. गांधारी + धैवती + मध्यमा + पंचमी–	मध्यमोदीच्यवा
10. गांधारी + नैषादी + मध्यमा + पंचमी–	रक्तगांधारी
11. षाडजी + गंधारी+ मध्यमा + पंचमी+ नैषादी–	कैशिकी[52]

भरतमुनि व इत्यादि मुनियों द्वारा पंचमी, मध्यमा व षडज–मध्यमा नाम से जिन जातियों का वर्णन प्राप्त होता है, उन्हें स्वरसाधारण कहा गया है अर्थात् वह जातियाँ जिनमें गंधार व निषाद को अल्प रूप में प्रयोग किया जाए, वह स्वरसाधारण कहलाते है व वह जातियाँ जो विकृत हो स्वरसाधारण उन्हें ही समझना चाहिए।[53]

ग्रह– जिस स्वर द्वारा गीत का आरम्भ होता है। उस स्वर को ग्रह स्वर की संज्ञा दी गयी है। ग्रह स्वर व अंश स्वर एक ही होते है अर्थात् जिस स्थान पर अंश स्वर का वर्णन हो उसे ही ग्रह स्वर भी समझना चाहिए।

अंश– गीत में जब संवादी–अनुवादी स्वरों के साथ तार स्वर व मन्द्र स्वरों को स्थान दिया जाए, प्रमुख स्वर को अंश स्वर को कहा गया है।

---

(52) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–7/श्लोक–1–20
(53) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–7/श्लोक–21–30

तार– जब तार सप्तक में अंश स्वर हो व चार स्वर में आरोह किया जाए, उसे ही तार कहा गया है।

मन्द्र– मन्द्र उसे कहा गया है, जो मध्य स्थान से पूर्व स्थित हो अर्थात मध्य स्थान से नीचे के वह स्वर जिनकी प्राप्ति आवरोह में हो उसे ही मन्द्र कहा गया है।

न्यास– वह स्वर जहां गीतखण्ड पूर्ण हो वह न्यास स्वर कहा जाता है, जिसकी संख्या इक्कीस कही गयी है, जो सात जातियां षडजी, आर्षभी, गान्धारी, मध्यमा, पंचमी, धैवती व नैषादी में क्रम से स, रे, ग, म, प, ध, नी को न्यास का स्वर कहा गया है।

अपन्यास– गीतखण्ड का जिस स्वर पर अन्त होता है, उसे ही अपन्यास की संज्ञा दी गयी है।

संन्यास– जो संवादी व गीतखण्डों का अन्त करने वाला हो उसे संन्यास कहा गया है।

विन्यास– वह स्वर जो अंश स्वर से सम्वादी होते है, व अन्त में होते है उसे ही विन्यास कहा जाता है।

बहुत्व– अलंघन व अभ्यास दो प्रकार के बलुत्व का वर्णन किया गया है, जिन स्वरों को पूर्ण स्पर्श किया जाता है उसे अलंघन बहुत्व कहा गया है व बहुत्व अधिकतर वादी सम्वादी में प्राप्त होता है।

अल्पत्व– अनभ्यास व लंघन के आधार पर दो प्रकार के अल्पत्व कहे है। जिसके अर्न्तगत अंश स्वर के स्थान पर लोप स्वरों के साथ ही अल्पत्व का प्रयोग किया जाता है।

लंघन– स्वर को कुछ छूने को ही लंघन कहा गया है। जिन स्वरों का लोप होता है उन्हीं को किन्चित स्पर्ष ही लंघन कहा जाता है।

अन्तरमार्ग– वह स्वर जो लग्घन व अनाभ्यास के रूप में विचित्रता का सृजन करने में सक्षम हो यह स्वर अशं स्वर, ग्रह स्वर, न्यास स्वर, विन्यास स्वर आदि से भिन्न स्वर कहे गए है। उसे ही अन्तरमार्ग कहा गया है।

षाडव– वह जाति जो छः स्वरों के संयेाजन निर्मित हो उसे षाडव के रूप में जाना जाता है।

औडुव– उडुव अर्थात् आकाश, माना जाता है कि पंच भूतों में आकाश को पंचवा भूत माना गया है, इसी प्रकार औडव के अर्न्तगत भी पाँच स्वर स्वीकारे जाते उसे ही औडुव जाति कहा जाता है।[(54)]

जाति के लक्षण– षडज व मध्यम ग्राम की जातियों के लक्षणों को वर्णित किया गया है।

षाडजी जाति– षाडजी जाति के अर्न्तगत ऋषभ व निषाद के अतिरिक्त सभी स्वर अंश कहे जाते है। यह षाडव जाति में है क्योंकि प्रस्तुत जाति में निषाद को प्रयोग देखने को नहीं मिलता है व मूर्च्छना धैवतादि कही है। ताल के विषय में कहा है कि पंचपाणि में एककल, द्विकल व चतुष्कल का प्रयोग होता है। इसमें बारह कलाएं है। **जाति–**षाडजी, **अंश–**स,ग,म,प,ध, **न्यास–**स, **अपन्यास–**ग,प, **मूर्च्छना–** उत्तरमंद्रा– ध, नी, स, रे, ग, म, प, ध, नी, स, रे, स, **षाडवकारी स्वर**–नी।

आर्षभी जाति– ऋषभ, धैवत व निषाद अंश स्वर कहे है। पंचम को लंघा जाता है। पंचमादि मूर्च्छना कहते हुए, चच्चत्पुट ताल है, और आठ कलाएं है। **जाति–**आर्षभी, **अंश–**रे,ध,नी, **न्यास–**रे **अपन्यास–**रे,ध,नी, **मूर्च्छना–**शुद्धषडजा–रे,ग,म,प,ध,नी,स,रे,ग,म,प,ध, **षाडवकारी स्वर**–स, **औडवकारी स्वर–**स,प।

गांधारी जाति– रे–ध के अतिरिक्त सभी स्वर अंश स्वर माने गए है। सोलह कलाओं से युक्त कहा है। ताल चच्चत्पुट कहा है। **जाति**–गांधारी, **अंश–**स, ग, म, प, नि, **न्यास–**ग, **अपन्यास**–स, प, **मूर्च्छना**–पौरवी–पथ नि स रि ग म प ध नि सरि, **षाडवकारी स्वर**–रे, **औडवकारी स्वर–**रे,ध।

मध्यमा जाति– गान्धार व निषाद के अतिरिक्त सभी को अंश स्वर कहा गया है। **जाति–**मध्यमा, **अंश–**स,रि,म,प,ध, **मूर्च्छना–**कलोपनता– रि ग म प ध नि स रि ग म प ध, **न्यास**–म **अपन्यास–**स,रि,म,प,ध, **षाडवकारी–**ग, **औडुवकारी स्वर–**ग।

पंचमी जाति– प्रस्तुत जाति में रे–प को अंश स्वर कहा है। अल्प स्वर के रूप में षडज, गांधार व मध्यम को कहा है। जिसमें रे–म की संगति देखने को मिलती है। प्रस्तुत जाति में आठ कलाएं प्राप्त होती है व चच्चत्पुट ताल को ऋषभादि मूर्च्छना के साथ कहा है।

---

(54) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–7/श्लोक–31–58

जाति–पंचमी **अंश**–रि, प **मूर्च्छना**–कलोपनता –रि ग म प ध नि स रि ग म प ध, **न्यास**–प **अपन्यास**–रि, प, नि।

धैवती जाति– अंश स्वर ऋषभ व धैवत, आरोह में स–प को लंघन किया जाता है। समस्त लक्षण षाडजी जाति के स्वीकारते हुए मूर्च्छना ऋषभादि को कहा है। **जाति**–धैवती **अंश**–रि, ध, **मूर्च्छना**–अभिरुद्गता–प ध नि स रि ग म प ध नि स रि, **न्यास**–ध **अपन्यास**–रि,प, ध,

नैषादी जाति– गांधार, ऋषभ व निषाद स्वर को अंश स्वर स्वीकारा गया है और मूर्च्छना गांधारादि को मानते हुए, चच्चत्पुट ताल को कहा है जो सोलह कलाओं से सुशोभित होती है। **जाति**–नैषादी, **अंश**–नि,रि,ग, **मूर्च्छना**–अश्वक्रांता–म प ध नि स रि ग म प ध नि स, **न्यास**–नि, **अपन्यास**–नि, रि, ग

षडजकैशिकी जाति– षडज, गांधार व पंचम को अंश स्वर कहा है। सोलह कलाओं के सहित चच्चत्पुट ताल को कहा है। षडज, निषाद व पंचम को अपन्यास स्वर कहते हुए गाधांर स्वर पर न्यास कहा है। **जाति**–षड्जकैशिकी, **अंश**–स, ग, प, **न्यास**–ग, **अपन्यास**–स, प, नि।

षडजोदीच्यवा जाति– षडज, मध्यम, निषाद व धैवत को अंश स्वर कहा है। सर्वाधिक प्रयोग होने वाला स्वर षडज व ऋषभ को कहा है व गंधार को भी बाहुल्य रूप में प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत जाति में अन्य सभी लक्षण षडजी जाति के समान स्वीकार किए गए है। **जाति**–षड्जोदीच्यवा, **अंश**–स,म, ध, नि, **न्यास**–म, **अपन्यास**– स, ध**, मूर्च्छना**–अश्वक्रांता– म प ध नि स रि ग म प ध नि।

षडजमध्यमा जाति– इस जाति में सभी स्वर अशं स्वर के रूप में माने गए है। षडजी के समान ही ताल, कला व गीति आदि को माना गया है व मूर्च्छना मध्यमादि को माना गया है। **जाति**–षड्जमध्यमा, **अंश**–स,रि,ग,म,प,ध,नि, **न्यास**–स, म, **अपन्यास**– स,रि,ग,म,प,ध,नि **मूर्च्छना**–मत्सरीकृता– ग म प ध नि स रि ग म प ध नि।

गंधारोदीच्यवा जाति– अंश स्वर षडज तथा मध्यम को माना गया है। मूर्च्छना धैवतादि को व चच्चत्पुट को ताल कहा गया है, जो सोलह कलाओं से सुशोभित है। **जाति**–

गांधारोदीच्यवा, **अंश**–स, म, **न्यास**–म, **अपन्यास**– स, ध, **पौरवी**–प ध नि स रि ग म प ध नि स रि।

रक्तगांधारी जाति– प्रस्तुत जाति के अर्न्तगत ऋषभ व धैवत के अतिरिक्त सभी स्वर अंश स्वर के रूप में प्राप्त होते है व षडज–गांधार की संगति मुख्य रूप से प्राप्त होती है। इसकी जाति औडव कही गयी है, क्योंकि ऋषभ व धैवत स्वर को लोप रखा गया है। ऋषभादि को मूर्च्छना के अर्न्तगत माना गया है। **जाति**–रक्तगांधारी, **अंश**–स,ग,म,प,नि, **मूर्च्छना**–कलोपनता–रि ग म प ध नि स रि ग म प ध, **न्यास**–ग, **अपन्यास**–म।

कैशिक जाति– प्रस्तुत जाति के अर्न्तगत ऋषभ के अतिरिक्त सभी स्वर अंश स्वर के रूप में स्वीकारे गए है व जब पंचम स्वर को न्यास माना जाता है, तब निषाद व धैवत स्वर अंश स्वर के रूप में प्राप्त होता है। गांधारादि नामक मूर्च्छना के अर्न्तगत प्राप्त होता है। **जाति**– कैशिकी, **अंश**– स,ग,म,प,ध,नि, **न्यास**–ग, प, नि, **अपन्यास**–स, ग, म, प,ध, नि, **मूर्च्छना**– हारिणाश्वा–स रि ग म प ध नि स रि ग म प।

मध्यममोदीच्यवा जाति– अंश स्वर पंचम है, इसकी जाति पूर्ण कही है। मध्यमादि मूर्च्छना व चच्चत्पुट ताल कही है न्यास का स्वर मध्यम माना है। **जाति** मध्यमोदीच्यवा–प,स,ध, **मूर्च्छना**–सौवीरी–नि सरि ग म प ध नि स रिग म।

कार्मारवी जाति– अंश स्वर नी, ध, प तथा रे को कहा है। बाहुल्य स्वर गांधार स्वर को माना है। जिसमें सोलह कलाए व चच्चत्पुट ताल में कहा है। न्यास का स्वर पंचम कहा है। **जाति**–कार्मारवी, **अंश**–रि, प, ध, नि, **न्यास**–प, **अपन्यास**–रि, प, ध, नि, **मूर्च्छना**– शुद्धमध्या ग म प ध नी स रे ग म प ध नी।

गांधारपंचमी जाति– ग–प की संगति का प्रयोग होता है। पंचम को अंश स्वर कहा है। सोलाह कलाओं से युक्त चच्चत्पुट ताल के अर्न्तगत गांधारादि मर्च्छना को स्वीकारा है। **जाति**–गांधारपंचमी, **न्यास**–प, **अपन्यास**–रि, प, **मूर्च्छना**–हारिणाश्वा–सरि ग म प ध नि स रि ग म प।

आंध्री जाति– अंश स्वर पंचम, निषाद, गांधार तथा ऋषभ है व ऋषभ–गांधार तथा निषाद–धैवत की संगति का वर्णन किया गया है। षडज स्वर के आभाव में षाडव जाति

कही है व मध्यमादि मूर्च्छना है। **जाति–** आंध्री, अंश–रि, ग, प, नि, **न्यास–** ग **अपन्यास–** रि, ग, प, नि, **मूर्च्छना–** सौवीरी–नि स रि ग म प ध नि स रि ग म।

नंदयती जाति– नंदयती जाति के अर्न्तगत अंश स्वर पंचम को, ग्रह व न्यास स्वर गांधार और मध्यम व पंचम को अपन्यास कहा है। ऋषभ को बाहुल्य स्वर कहते हुए, ह्रष्यका मूर्च्छना स्वीकारी गयी है। **जाति–**नंदयंती **अंश–** प, **न्यास–** ग, **अपन्यास–**म,प, **मूर्च्छना–** ह्रष्यका– ध नि स रि ग म प ध नि स रिग **षाडवकारी स्वर**–स।[(55)]

इसके अतिरिक्त जिस स्थान पर लय व ताल के विषय में जानकारी नहीं पंस्तुत की गयी है वहाँ एककल, द्विकल व चतुष्कल में अर्न्तगत चच्चत्पुट ताल को ही स्वीकारा जागा। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रकारण द्वारा पं० शारंगदेव जी द्वारा जाति को परिचय प्रस्तुत किया गया है।[(56)]

3.5.1.8 गीति प्रकरण

गीति प्रकरण संगीत रत्नाकर के प्रथम अध्याय के आठवें प्रकरण के रूप में प्राप्त होता है, **कपाल** पं० शारंगदेव जी द्वारा शुद्ध जातियों से उत्पन्न होने वाले कपालों का वर्णन किया गया है। जिन्हें जातियों द्वारा प्राप्त होने वाले राग कपाल से समान स्वीकारे गए है।
षडज कपाल– ग्रह– षडज, **अंश–** षडज, **न्यास–** गंधार, **अपन्यास–** षडज, **अल्प–** ऋषभ, पंचम, निषाद, धैवत, **बहुल–** गंधार, मध्यम, **लंधनीय–**ऋषभ, **कला–** बारह, **जाति–** षाडजी।

आर्षभी कपाल– अंश– ऋषभ, **न्यास–** मध्यम, **अपन्यास–** ऋषभ **अल्प–** षडज, गंधार, निषाद, पंचम, धैवत**, कला–** आठ, **जाति–** आर्षभी।

गंधारी कपाल– ग्रह– मध्यम, **अंश–**मध्यम, **न्यास–**मध्यम, **अपन्यास–** मध्यम, **अल्प–** षडज, ऋषभ, गंधार, **बहुल–** धैवत, **लंधनीय–** ऋषभ, **कला–** आठ, **जाति–**गंधारी।

मध्यमा कपाल– अंश– मध्यम, **अल्प–** निषाद, ऋषभ, गंधार, पंचम, **कला–** नौ **जाति–**मध्यमा।

---

(55) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–7/श्लोक–59–109
(56) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–7/श्लोक–110–114

पंचमी कपाल– ग्रह– ऋषभ, **अंश–** ऋषभ, **अल्प–** निषाद, धैवत, षडज, गंधार, मध्यम**, कला–** नौ **जाति–**पंचमी।

धैवत कपाल– ग्रह–षडज, **अंश–** षडज, **न्यास–** पंचम, **अपन्यास–** षडज, **अल्प–** ऋषभ, गंधार, **कला–** आठ, **जाति–** धैवती।

नैषादी कपाल– ग्रह– षडज, **अंश–** षडज**, न्यास–** षडज, **अल्प–** ऋषभ, गंधार, **बहुल–** निषाद, धैवत, मध्यमा, **जाति–** नैषादी।**(57)**

जब ग्रह, अंश व अपन्यास स्वर पंचम को माना जाए, किन्तु प्रबल स्वर ऋषभ दिखे व न्यास का स्वर षडज व मध्यम, धैवत तथा गंधार को अल्प प्रयोग किया जाए, उसे पंचमी जाति द्वारा उत्पन्न कम्बल कहा जाता है। अल्पत्व तथा बहुत्व के आधार पर कम्बल के असंख्य भेद पूर्वाचार्यों द्वारा कहे गए है। कहा जाता है कि कम्बल के गान द्वारा प्रसन्न होने के पश्चात् शिव जी द्वारा वरदान किया गया।**(58)** वर्णों आदि से सुशोभित, पद व लय के योग द्वारा जो गान हो उसे गीति कहा गया है। मागधी, अर्धमागधी, संभाविता व पुथुला को गीति के चार भेद कहा गया है। साथ ही सभी के लक्षणों को भी कहा है। तीन आवृत्तियों से युक्त अर्थात् तीनों लयों के समावेशन द्वारा मागधी का निर्माण होता है। इसी प्रकार पूर्व पद के आखरी के आधे भाग का दो बार गान करने पर वह अर्धमागधी कहा जाता है। जब पद संकोच व दीर्घ अक्षरों से युक्त होते है, तो उन्हें संभाविता गीति कहा जाता है। ह्रस्व अक्षर जब ज्यादा हो उसे पृथुला गीति कहा है। तत्पश्चात् पं० शारंगदेव जी द्वारा इन्हीं गीतियों के आाधार पर तालाश्रित वर्णन भी प्रस्तुत किया है।**(59)** इस प्रकार प्रथम अध्याय जो आठ प्रकरणों में विभाजित है, उसे पं० शारंगदेव जी द्वारा संगीत रत्नाकर के प्रथम खण्ड में विस्तार सहित वर्णित किया गया है।

3.5.2 रागविवेकाध्याय

स्वरविवेकाध्याय के पश्चात् राविवेकाध्याय का वर्णन शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत किया गया है। जिस दो प्रकरणों में पं० शारंगदेव जी द्वारा विभक्त किया गया है। प्रथम प्रकरण ग्रामराग,

---

(57) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–8/श्लोक–1–10
(58) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–8/श्लोक–11–13
(59) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–1/प्रकरण–8/श्लोक–14–25

उपराग, राग, भाषा, विभाषा, अन्तरभाषाविवेक नामक प्रकरण तथा दूसरा प्रकरण रागांगादि, निर्णय नामक प्रस्तुत अध्याय में शोधार्थी द्वारा परिचय स्वरूप वर्णित किए जा रहे है।

3.5.2.1 प्रथम प्रकरण ग्रामराग, उपराग, राग, भाषा, विभाषा, अन्तरभाषाविवेक नामक प्रकरण–

सर्वप्रथम ग्रन्थकार पं० शारंगदेव जी द्वारा प्रतिपाद्य विषय का सूचन संगीत रत्नाकर के श्लोक–1 से 7 के मध्य किया गया है, जिसमें वर्णित है कि निःशंक की उपाधि से विभूषित पं० शारंगदेव जी द्वारा संक्षेप मे तथा स्पष्ट व सरल रूप में पदों को व्याख्यित करते हुए, सम्पूर्ण पाठ को विस्तार से कहा है, तथा ग्राम राग के अर्न्तगत पाँच प्रकार की गीतियों को कहा है, जिनके नाम शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, वेसरा तथा सधारणी कहे है। इस प्रकार पाँच गीतियों के नाम पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्णित किए गए है।

इसके अतिरिक्त शुद्धा के लक्षण इस प्रकार कहे है कि जो शुद्ध को वक्र स्वभाव से युक्त न हो तथा मनोहर स्वरों से युक्त हो उसे शुद्ध मनना चहिए, भिन्ना उसे कहा है जो वक्र स्वरों द्वारा अलंकृत हो, मधुर व मनोहर गमकों तथा सूक्ष्मता के लावण्य से युक्त हो वह भिन्न गीति कही जायेगी, गौडी वह है जो प्रगाढ़ (सघन) गमकों से युक्त होने पर तीनो स्थानों में हो व रागों द्वारा ललित रूप लिए हो व अवछिन्न रूप से तीनों स्थानों के स्वरों को प्राप्त करती हो उसे ही सज्जनों तथा विद्वानों ने गौड़ी कहा है, जो ध्वनि हकार तथा ओकार युक्त हो अर्थात् ठोड़ी को हृदय पर रखने से जो ध्वनि प्राप्त हो उसे ओहाटी कहा है।

वेसरा के विषय में पं० शारंगदेव जी द्वारा कहा गया है कि स्थाई, अन्तरा, संचारी आभोग जैसे सभी चारों वर्णों में संचालन द्रुत गति से अर्थात् वेगपूर्ण हो उसे वेसरा स्वीकारा गया है तथा चारों अन्य गीतियों के संयुक्त लक्षणों से युक्त गीत को साधारणी गीति स्वीकारा गया है।

ग्रामराग– इसके पश्चात् संगीत रत्नाकर के श्लोक 8 से 14 के मध्य रागों के उद्देश्यों को वर्णित करते हुए सर्वप्रथम ग्रामराग पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्णित किए गए है जो कि इस प्रकार है।

→शुद्ध राग के अर्न्तगत कुल सात ग्रामराग माने है– जिसमें से तीन शुद्ध षड्जग्राम से–शुद्धकैशिकमध्यम, शुद्धसाधारित तथा षड्जग्राम तथा मध्यमग्राम से चार–पंचम, षाडव, मध्यमग्राम तथा शुद्धकैशिक।

→भिन्न राग पाँच कहे है, जिसमें दो कैशिकमध्यम तथा भिन्नषड़ज को षड़ज ग्राम के अर्न्तगत तथा तान, कैशिक और भिन्नपंचम यह तीन मध्यमग्राम द्वारा प्राप्त होना कहा गया है।

→गौड़ रागों की संख्या तीन कही है, जिसमें दो षडजग्राम के अर्न्तगत गौड़कैशिकमध्यम तथा गौड़पंचम तथा मध्यम ग्राम के अर्न्तगत गौड़कैशिक को वर्णित किया है।

→वेसरा रागों के आठ प्रकार कहे है। षडजग्राम के अर्न्तगत टक्क, वेसरषाडव तथा सौवर यह तीन कहे है। मध्यमग्राम के बोट्ट, मालवकैशिक व मालवपंचम नामक तीन राग कहे है। षडजग्राम तथा मध्यमग्राम के संयुक्त रूप द्वारा हिन्दोल तथा टक्ककैशिक नामक दो राग कहे है।

→साधारण के अर्न्तगत षड्जग्राम से रूपसाधार, शक, भम्माणपंचम यह तीन राग वर्णित है। मध्यमग्राम के अर्न्तगत नर्त, गंधारपंचम तथा षड्जकैशिक तीनों रागों का कहा है व षडजग्राम तथा मध्यमग्राम के संयुक्त रूप द्वारा ककुभ नामक एक राग की उत्पत्ति स्वीकारी गयी है।

उपराग, राग, भाषाजनक राग–पं० शारंगदेव जी द्वारा श्लोक 15 से 46 के मध्य उपराग, राग, भाषाजनक राग, भाषा, विभाषा, अन्तरभाषा को कहा गया है।

→उपरागों की संख्या आठ कही गयी है। जिसमें शकतिलक, टक्कसैन्धव, कोकिलापंचम, रेवगुप्त, पंचमषाडव, भावनापंचम, नागगान्धार और नागपंचम नामक राग सम्मिलित है।

→राग रागों की संख्या बीस वर्णित है जिनमें– श्रीराग, नट्ट, दानों प्रकारों के बंगाल, भास, मध्यमषाडव, रक्तहंस, कोल्हहास, प्रसव, भैरव, ध्वनि, मेघराग, सोमराग, कामोद के दो प्रकार, आम्रपंचम, कन्दर्प, देशाख्य, कैशिककुभ तथा नट्टनारायण।

→भाषा जनक रागों की संख्या याष्टिक मुनि द्वारा पन्द्रह कही गयी है –सौवीर, ककुभ, टक्क, पंचम, भिन्नपंचम, टक्ककैशिक, हिन्दोल, बोट्ट, मालवकैशिक, गान्धारपंचम, भिन्नषड्ज, वेसरषाडव, मालवपंचम, तान तथा पंचमषाडव इस प्रकार रागों के नामों का कहा गया है।

भाषा, विभाषा, अन्तरभाषा– भाषा, विषाभा तथा अन्तरभाषा में कुल छियानबे रागों के नाम वर्णित किए है, जो इस प्रकार है।

सौवीर ग्रामराग के अर्न्तगत चार भाषाएँ कही गयी है। जो कि **1.** सौवीरी, **2.** वेगमध्यमा, **3.** साधारिता तथा **4.** गान्धारी ।

ककुभ ग्रामराग में भाषाओं की संख्या छह मानी गयी है, जो कि **1.** भिन्नपंचमी, **2.** काम्भोजी, **3.** मध्यमग्रामा, **4.** रगन्ती, **5.** मधुरी और **6.** शकमिश्राय तथा विभाषाएँ तीन कह है। **1.** भोगवर्धनी, **2.** आभीरिका और **3.** मधुकरीय। अन्तरभाषा एक ही कही है– **1.** शालवाहनिका।

टक्क ग्रामराग की इक्कीस भाषाओं को कहा है, जिनके नाम है–**1.** त्रवणा, **2.** त्रवणोद्भवा, **3.** वैरंजी, **4.** मध्यमग्रामदेहा, **5.** मालववेसरी, **6.** छेवाटी, **7.** सैन्धवी, **8.** कोलाहला, **9.** पंचमलक्षिता, **10.** सौराष्ट्री, **11.** पंचमी, **12.** वेगरंजी, **13.** गान्धारपंचमी, **14.** मालवी, **15.** तानवलिता, **16.** ललिता, **17.** रविचन्द्रिका, **18.** ताना, **19.** अम्बाहेरिका, **20.** दोया तथा **21.** वेसरीया। इस प्रकार चार विभाषाओं भी कहा है–**1.** देवावर्धनी, **2.** आन्ध्री, **3.** गुर्जरी और **4.** भावनी है।

पंचम ग्रामराग के अर्न्तगत दस भाषाओं को कहा गया है जो इस प्रकार है– **1.** कैशिकी, **2.** त्रावणी, **3.** तानोद्भवा, **4.** आभीरी, **5.** गुर्जरी, **6.** सैन्धवी, **7.** दाक्षिणात्या, **8.** आन्ध्री,

9. मांगली तथा **10.** भावनीय। दो विभाषाओं को भी कहा गया है–**1.** भम्माणी, **2.** आन्धालिका।

भिन्नपंचम ग्रामराग की चार भाषाऐं वर्तित की गयी है–**1.** धैवतभूषिता, **2.** शुद्धभिन्ना, **3.** वाराटी और **4.** विशालाय, परन्तु विभाषा एक ही कही है– कौशली

टक्ककैशिक ग्रामराग की भाषाओं की संख्या दो है–**1.** मालवा तथा **2.** भिन्नवलिताय। विभाषा एक है– द्राविडी।

हिन्दोल ग्रामराग के अर्न्तगत नौ भाषाऐं प्राप्त होती है– **1.** वेसरी, **2.** चूतमंजरी अर्थात् कषायित, **3.** षड्ज– मध्यमा, **4.** मधुरी, **5.** भिन्नपौराली, **6.** गौडी, **7.** मालववेसरी, **8.** छेवाटी तथा **9.** पिंजरी।

बोट्ट ग्रामराग के अर्न्तगत मात्र एक भाषा मांगली कही गयी है।

मालवकैशिक ग्रामराग की तेरह भाषाओं इस प्रकार कहा है– **1.** बांगाली, **2.** मांगली, **3.** हर्षपुरी, **4.** मालववेसरी, **5.** खंजनी, **6.** गुर्जरी, **7.** गौडी, **8.** पौराली, **9.** अर्धवेसरी, **10.** शुद्धा, **11.** मालवरूपा, **12.** सैन्धवी तथा **13.** आभीरिकाय। दो विभाषाऐं जो कि– **1.** काम्भोजी तथा **2.** देवारवर्द्धनी है।

गान्धारपंचम ग्रामराग की मात्र एक ही भाषा है–गान्धारी।

भिन्नषड्ज ग्रामराग के अर्न्तगत सत्रह भाषाओं का वर्णन प्राप्त होता है, जो कि– **1.** गान्धारवल्ली, **2.** कच्छेल्ली, **3.** स्वरवल्ली, **4.** निषादिनी, **5.** त्रवणा, **6.** मध्यमा, **7.** शुद्धा, **8.** दाक्षिणात्या, **9.** पुलिन्दका, **10.** तुम्बुरा, **11.** षड्जभाषा, **12.** कालिन्दी, **13.** ललिता,

14. श्रीकण्ठिका, **15.** बांगाली, **16.** गान्धारी तथा **17.** सैन्धवीय व चार विभाषाओं के नाम इस प्रकार है–**1.** पौराली, **2.** मालवा, **3.** कालिन्दी तथा **4.** देवारवर्धनी।

वेसरषाडव ग्रामराग में दो भाषाऐं है– **1.** नाद्या **2.** बाह्यषाडवाय। दो विभाषाओं को भी कहा है– **1.** पार्वती तथा **2.** श्रीकंठी।

मालवपंचम ग्रामराग की तीन भाषाओं के नाम है –**1.** वेदवती, **2.** भावनी, **3.** विभावनी।

तान ग्रामराग की एक तानोद्भवा नामक भाषा है।

पंचमषाडव उपराग मात्र एक भाषा कही है–पोता।

रेवगुप्त जो **उपराग** है, में एक ही भाषा शका कही है। एक विभाषा भी है–पल्लवीय व तीन अन्तरभाषाएँ जो की इस प्रकार है– **1.** भासवलिता, **2.** किरणावली और **3.** शकवलिता। बृहद्देशी में मतंग मुनि द्वारा में इन चार विभाषा पल्लवीय व अन्य अन्तरभाषाएँ **1.** भासवलिता, **2.** किरणावली और **3.** शकवलिता को जनकराग नहीं माना है।

बृहद्देशी में मतंग मुनि द्वारा भाषा के चार प्रकार कहे है– मुख्या, स्वराख्या, देशाख्या तथा उपरांगजा, जो अन्य पर अश्रित न हो वह मुख्या, जिसे स्वरों के नाम द्वारा पहचानी जाए, वह स्वराख्या, अन्त में जिसे देश के नाम द्वारा पहचाना जाए, देशाख्या कही है। तीनों प्रकारों से भिन्न के अर्न्तगत भाषा उपरागजा प्राप्त होती है। जिसे याष्टिक ने संकीर्णा, देशजा, मूला तथा छायामात्रा के नाम से सम्बोधित किया गया है तथा मालववेसरी भाषा के अर्न्तगत तीन प्रकार कहे है– शुद्धा, आभीरी और रगन्ती।**(60)**

3.5.2.2 दूसरा प्रकरण रागांगादि–निर्णय नामक

सर्वप्रथम दूसरे अध्याय के अर्न्तगत उपोद्घात को कहा है, जिसमें वर्णित है कि श्री सोढ़ल जी के पुत्र निःशंक पं० शारंगदेव जी द्वारा कुछ विद्वानों के मतो के साथ रागांग, भाषांग, क्रियांग, तथा उपांग को निर्णियत किया गया है तथा रंजकता की उत्पत्ति कही है जिससे

(60) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–2/प्रकरण–2/श्लोक–1–46

रागता का जन्म होता है व इससे भाषा, विभाषा तथा अर्न्तगत भाषा रागांग, भाषांग, क्रियांग तथा उपांग जिसके मध्यम से रागता इच्छित होता है इस प्रकार देशीरागों के रूपों को वर्णित किया गया है। कुछ ग्रामरागों को देशीरागों के अर्न्तगत भी वर्णित किया गया है। पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्णित आठ रागांगों के नाम इस प्रकार है– शंकराभरण, हंसक, घण्टारव, दीपक, कर्णाटिका, रीति, पंचाली तथा लाटी। भाषांगों के ग्यारह नामों का वर्णन किया गया है– गाम्भीरी, श्वासिता, वेहारी, उत्पली, नादान्तरी, गोली, नीलोत्पली, छाया, वैरंजी तरंगिगी, गान्धारगतिक।

इसी क्रम में क्रियागों की संख्या बारह कही है– भावक्री, शिवक्री, स्वभावक्री, मकरक्री, कुमुदक्री, त्रिनेत्रक्री, दनुक्री, ओजक्री, नागकृति, इद्रक्री, विजयक्री, धन्यकृति। पूर्णाटी, देवाल, व गुरूञ्जिका नामक तीन उपांग कहे गए है। इस प्रकार दूसरे प्रकरण के श्लोक 1 से श्लोक 9 के मध्य इस प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है।[(61)]

रागांग, भाषांग, क्रियांग, उपांग का वर्णन श्लोक 9 से श्लोक 18 के मध्य किया गया है। तेरह **रागांग** राग इस प्रकार है– मध्यमादि, मालवश्री, तोडी, बंगाल भैरव, (6) वराटी, गुर्जरी, गौड, कोलाहल, वसन्त, धन्यासी, देशी तथा देशाख्या।

भाषांग रागों की संख्या नौ कही है– सावरी, वेलावली, प्रथममंजरी, आडिकामोदी, नागध्वनि, शुद्धवराटी, नट्टा, कर्णाटबंगाल। क्रियांग राग तीन कहे है–रामकृति, गौडकृति तथा देवक्री उपांग राग कुल सत्ताईस है। जिसके अर्न्तगत वराटी उपांग राग, तोड़ी उपांग राग, गुजरी उपांग राग, गौड़ उपांग राग कहे है इस प्रकार है जिनकी कुल सख्या सत्ताईस कही है।

वाराटी उपांग राग छः

1.	कौन्तली	**2.**	द्राविडी	**3.**	सैंधवी
4.	अपस्थानवराटी	**5.**	हतस्वरवराटी	**6.**	प्रतापवराटी

तोडी उपांग राग दो

1.	छायातोड़ी	**2.**	तुरुष्कतोड़ी

(61) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–2/प्रकरण–2/श्लोक–1–9

गुजरी उपांग राग चार

1. महाराष्ट्री **2.** सौराष्ट्री, **3.** दक्षिणा **4.** द्राविडी

गौड उपांग राग पन्द्रह–

1. भुंजिका, **2.** स्तम्बतीर्थिका, **3.** छायावेलावली, **4.** प्रतापवेलावली,
5. भैरवी, **6.** कामोदासिंहली, **7.** छायानट्टा, **8.** रामकृति
9. भल्लातिका **10.**मल्हारी **11.**मल्हार **12.**कर्णाट
13.देशवाल **14.**तुरुष्क **15.**द्राविड

वर्ग	उद्दिष्ट	लक्षित
1. ग्रामराग	30	30
2. उपराग	8	2
3. राग	20	10
4. भाषा	96	23
5. विभाषा	20	4
6. अन्तरभाषा	4	X
	कुल 178	**कुल 69**
7. रागांग	21	13
8. भाषांग	20	9
9. क्रियांग	15	3
10.उपांग	30	27
	कुल 83	**कुल 52**
	कुल उद्दिष्ट 264	**कुल लक्षित 121**[(62)]

इस प्रकार पं० शारंगदेव जी द्वारा कुल 264 रागों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

(62) चौधरी सुभद्रा / पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / अध्याय–2 / प्रकरण–2 / श्लोक–10–20

ग्राम राग[(63)] के षड्जग्राम के राग–श्लोक 21–67 के मध्य वर्णित किया गया है जो कि इस प्रकार है–

शुद्धसाधारित– षड्जमध्यमा जाति से उत्पन्न शुद्धसाधारित ग्रामराग का ग्रह तथा अंश स्वर तार षड्ज को माना गया है व न्यास का स्वर मध्यम है। प्रस्तुत राग मे निषाद व गंधार का अल्प प्रयोग किया जाता है। जिसकी मूर्च्छना षड्ज से आरम्भ की जाती है और जाति सम्पूर्ण है। शुद्धसाधारित के देवता सूर्य को माना गया है। इस राग का गायन दिन के प्रथम प्रहर में होता है जिससे वीर तथा रौद्र रस की निष्पत्ति होती है।

रागालाप– रागालाप वह है, जिसके माध्यम से अंश, ग्रह, तार, मन्द्र, न्यास–अपन्यास, अल्पत्व–बहुत्व तथा जाति जिसकी षाडव तथा औडव होते हुए राग की रंजकतापूर्ण ढंग से अभिव्यक्ति हो।

रूपक– रूपक एक प्रकार से आलाप के समान है, जिसका गायन भिन्न–भिन्न गीत खण्डों के अंर्तगत किया जाता है।

आक्षिप्तिका– जिसे किसी प्राचीन ताल के अर्न्तगत जैसे चच्चत्पुट आदि में निबद्ध किया गया हो, तथा तीनो मार्गों से अलंकृत हो व समस्त स्वरों से सुशोभित हो उसे ही आक्षिप्तिका कहा है।

षड्जग्राम– यह अपने नाम की ही जाति से जन्य राग माना जाता है, तथा तार षड्ज ही ग्रह तथा अंश कहे गए है व न्यास का स्वर मध्यम तथा षड्ज अपन्यास माना है। षड्ज आदि से मूर्च्छना का आरम्भ होता है, जिसमें काकली निषाद व अन्तर गंधार का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत राग वीर, रौद्र तथा अद्भुत रस से परिपूर्ण है व देवता गुरू को स्वीकारते हुए, गायन का समय दिन का प्रथम प्रहर कहा गया है।

शुद्धकैशिक– शुद्धकैशिक की उत्पत्ति कार्मारवी एवं कैशिकी के संयोग से मानी गयी है। तार षड्ज स्वर को ग्रह व अंश स्वर कहा गया है, तथा अन्तिम स्वर के रूप में पंचम को स्वीकारा जाता है। शुद्धकैशिक में काकली निषाद का प्रयोग होता है। अवरोह में स्वरों की

---

(63) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–2/प्रकरण–2/श्लोक–21–67

रंजकता से प्रसन्नान्त अलंकार का स्वरूप दृष्टिगत होता है, तथा जाति सम्पूर्ण वर्णित है। षड्ज स्वर द्वारा मूर्च्छना का आरम्भ किया जाता है। वीर, रौद्र और अद्भुत रस में गायकी का सृजन होता है। शुद्धकैशिक की ऋतु शिशिर मानी गयी है व गायन वादन का समय सन्धिप्रकाश अर्थात् दिन के प्रथम प्रहर माना गया है, तथा देवता मंगल है।

भिन्नकैशिकमध्यम– भिन्नकैशिकमध्यम की जाति षड्जमध्यमा है तथा ग्रह और अंश स्वर षड्ज स्वर को माना गया है। न्यास स्वर मध्यम या मन्द्र षड्ज को माना है। संपूर्ण जाति का राग है, तथा संचारी के अर्न्तगत काकली निषाद प्रयोग किया जाता है। देवता सोम को माना है। गायन वादन काल दिन के प्रथम प्रहर है। वीर, रौद्र और अद्भुत रस की निष्पत्ति होती है।

भिन्नतान– मध्यमा तथा पंचमी नामक जातियों के समिश्रण द्वारा भिन्नतान की निष्पत्ति मानी जाती है। पंचम स्वर को ग्रह व अंश स्वर स्वीकारा जाता है। अल्प अथवा न के बराबर ऋषभ का प्रयोग किया जाता है। अन्तिम स्वर या अल्प स्वर के रूप में मध्यम स्वर को माना जाता है। काकली निषाद का प्रयोग किया जाता है। संचारी वर्णों के अर्न्तगत प्रसन्नादि अलंकार प्रयुक्त होता है। मूर्च्छना का प्रारम्भ ऋषभ स्वर से किया जाता है। गायन तथा वादन का समय दिन के प्रथम प्रहर में माना जाता है। भिन्नतान ग्रामराग द्वारा करुण रस की प्राप्ती होती है, तथा देवता शिव जी को स्वीकारा जाता हैं।

भिन्नकैशिक– कैशिकी तथा कार्मारवी जाति के संयुक्त समिश्रण द्वारा उत्पत्ति मानी है। षड्ज को ग्रह, अंश स्वर तथा अपन्यास स्वर के रूप में स्वीकारा जाता है। भिन्नकैशिक को सम्पूर्ण–जातीय का माना है। काकली निषाद का प्रयोग किया जाता है। मन्द्र स्वरों का बाहुल्ता से प्रयोग किया जाता है। वीर, रौद्र और अद्भुत रसों की निष्पत्ति गायन तथा वादन द्वारा होती है। दिन के प्रथम प्रहर गायन किया जाता है तथा देवता शिव को स्वीकारा है।

गौडकैशिकमध्यम– निःशंक उपाधि को ग्रहण करने वाले पं० शार्ङ्गदेव जी द्वारा यह गौडकैशिकमध्यम की उत्पत्ति षड्ज–मध्यमा जाति से मानी है तथा षड्ज स्वर को ग्रह व अंश स्वर कहा है, तथा मध्यम स्वर को न्यास स्वर माना है। जाति से यह ग्रामराग

संपूर्ण–जाति का है, जिसमें काकली निषाद का प्रयोग होता है। गौड़कैशिकमध्यम विभस्त व वीर रस की निष्पत्ति होती है, तथा देवता के रूप में चन्द्रमा को स्वीकारा गया है। गायन, वादन का समय दिन का दूसरा प्रहर माना जाता है।

गौडपंचम– गौडपंचम की उत्पत्ति धैवती व षड्जमध्यमा जाति से मानी जाती है। इसका धैवत को ग्रह तथा अंश स्वर व मध्यम को अन्तय स्वर कहा है। प्रस्तुत ग्रामराग में पंचम स्वर का प्रयोग वर्जित माना जाता है। गौड़पंचम में काकली निषाद तथा अन्तरगान्धार का प्रयोग किया जाता है। मूर्च्छना का आरम्भ धैवत स्वर से माना है। आरोह में प्रसन्नमध्य अलंकार का प्रयोग होता है। भगवान विष्णु तथा कामदेव को यह ग्राम राग अति प्रिय माना जाता है। वीभत्स तथा विप्रलंभ रस की प्राप्ती होती है। ग्रीष्म ऋतु की दोपहर में इस ग्रामराग का गायन वादन होता है।

गौडकैशिक– गौडकैशिक की निष्पत्ति कैशिकी व षड्जमध्यमा जातियों के परस्पर समिश्रण द्वारा हुयी है, तथा षड्ज स्वर को ग्रह और अंश स्वर के रूप में प्रयोग किया जाता है। काकलीनिषाद प्रस्तुत ग्राम राग में प्रयोग होता है। न्यास का स्वर पंचम को माना गया है। जाति से यह संपूर्ण–जाति का राग है। प्रस्तुत ग्रामराग में मूर्च्छना को षड्ज स्वर से आरम्भ किया जाता है। आरोह में प्रसन्नाति अलंकार देखने को मिलता है। रसों में करुण, वीर, रौद्र और अद्भुत रस की प्राप्त प्रस्तुत ग्रामराग द्वारा होती है। गाड़कैशिक का गायन तथा वादन शिशिर ऋतु में होती है तथा दिन के दूसरे प्रहर को प्रस्तुत राग का समय माना जाता है। गौड़कैशिक शंकर प्रिय ग्रामराग के रूप में जाना जाता है।

वेसरषाडव– वेसरषाडव षड्जमध्यमा नामक जाति द्वारा उत्पन्न माना जाता है। मध्यम स्वर को ही न्यास स्वर, ग्रह, अंश स्वर माना है। काकलीनिषाद तथा अन्तरगान्धार दोनों को ही प्रयोग किया जाता है। आरोह के स्वरों में प्रसन्नादि अलंकार देखने को मिलता है। मध्यम आदि मूर्च्छना को प्रयुक्त किया जाता है। जाति सम्पूर्ण स्वीकारी जाती है। शुक्र जी को देवता के रूप में जाना जाता है। हास्य, श्रृंगार व शान्त रस की प्राप्ती होती है तथा दिन के उत्तरार्द्ध में गायन तथा वादन होता है।

बोट्ट– बोट्ट की उत्पत्ति पंचमी तथा षड्जमध्यमा नाम की जातियों द्वारा मानी जाती है। पंचम स्वर को अंश तथा ग्रह स्वर माना गया है व मध्यम न्यास स्वर को कहा है। काकलीनिषद युक्त ग्रामराग है, जिसमें गांधार को अल्प स्वर के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। संपूर्ण–जाति है व दिन के अंतिम प्रहर में गायन तथा वादन होता है।

मालवपंचम– मालवपंचम को मध्यमा और पंचमी जातियों द्वारा उद्गृहित माना जाता है। पंचम स्वर ही न्यास स्वर, ग्रह व अंश का स्वर है। प्रस्तुत ग्रामराग में गान्धार स्वर को अल्प प्रयोग किया जाता है। काकली निषाद को प्रयोग में लिया जाता है। देवता के रूप में केतु को माना गया है। दिन के अंतिम प्रहर में गायन व वादन की मान्यता है। रसों में हास्य व श्रृंगार रस द्वारा मालवपंचम सुशोभित होने का पता चलता है।

रूपसाधार– रूपसाधार की उत्पत्ति नैषादी तथा षड्जमध्यमा नामक जातियों से हुयी है। षड्ज स्वर को अंश तथा ग्रह स्वर व मध्यम को न्यास स्वर कहा जाता है। रूपसाधार में ऋषभ तथा पंचम स्वर को अल्प रूप में प्रयुक्त किया जाता है। यह काकलीनिषाद को प्रयोग होता है। संपूर्ण–जाति का ग्रामराग कहा जाता है। वीर रस, रौद्र रस और अद्भुत रस में वादन या गायन किया जाता है। वीर तथा करुण रस से परिपूर्ण राग है।

शक– शक की उत्पत्ति षाड्जी तथा धैवती जातियों से मानी गयी है। षड्ज स्वर को ग्रह, अंश तथा न्यास स्वर माना गया है। काकलीनिषाद और अन्तरगान्धार का प्रयोग किया जाता है। संपूर्ण जाति का है वीर तथा हास्य रस प्राप्त होते है यह एक सन्धि समय गाया जाने वाला राग है। शिवप्रिय राग माना जाता है।

भम्माणपंचम– शुद्धमध्यमा जाति से जन्य माना जाता है। ग्रह, अंश और न्यास का स्वर षड्ज को माना है परन्तु न्यास का स्वर मध्यम को भी कहा है। काकलीनिषाद व गान्धार अल्प रूप में प्रयुक्त होते है। जाति संपूर्ण तथा मूर्च्छना का आरम्भ षड्ज से होता है। आरोह वर्णों में प्रसन्नमध्य अलंकार सुशोभित होता है। यह वीर, रौद्र और अद्भुत रस में तथा पथ–भ्रान्त अथवा वन–भ्रान्त अवस्था में प्रयुक्त होता है। भम्माणपंचम को शिव प्रिय माना जाता है।

नर्त– मध्यमा और पंचमी जातियों द्वारा नर्त को उत्पन्न माना जाता है। अंश स्वर तथा ग्रह स्वर के रूप में पंचम को व न्यास स्वर के रूप में मध्यम स्वर को स्वीकारा जाता है। काकलीनिषाद का प्रयोग किया जाता है। गान्धार को अल्प रूप में ही प्रयोग किया जाता है। संचारी वर्ण में प्रसन्नमध्य अलंकार शोभित होता है। सुधी नर्तक युद्ध के दौरान उद्भट व मण्डल चारियों के अर्न्तगत नर्त का प्रयोग किया जाता है। कश्यप ऋषि ने हास्य तथा श्रृंगार रस के प्रयोग को कहा है।

षड्जकैशिक– षड्जकैशिक की निष्पत्ति कैशिकी जाति मानी जाती है। जिसका अंश स्वर षड्ज को और ऋषभ को ग्रह स्वर कहा है। ऋषभ स्वर को अल्प रूप में प्रयोग किया जाता है। न्यास स्वर निषाद व गान्धार को माना है और षड्ज, गान्धार स्वर मन्द्र सप्तक के प्रयोग किए जाते है। अवरोह के स्वरों को प्रसन्नादि अलंकार से शुशोभित किया गया है तथा षड्ज स्वर से मूर्च्छना का आरम्भ होता है। रसों में वीर रस, रौद्र रस तथा अद्भुत रस की प्राप्ती होती है। षड्जकैशिक के देवता शिव को माना गया है।

अधुनाप्रसिद्ध देशी रागों के लक्षण तथा जनकरागों के साथ(64)

मध्यमग्राम प्रस्तुत राग की उत्पत्ति मध्यमा, गान्धरी तथा पंचमी जाती से मानी जाती है। मध्यमग्राम काकली निषाद वाला राग है। अंश तथा ग्रह स्वर मन्द्र षडज को माना जाता है तथा मध्यम स्वर पर न्यास किया जाता है। प्रस्तुत राग की मूर्च्छना सौवीरा को माना गया है व अवरोह प्रसन्नादि अलंकार देखने को मिलता है तथा श्रृंगार व हास्य रस का सृजन करने में सक्षम माना जाता है।

मध्यमादि रागांग मध्यमग्राम राग द्वारा मध्यमादि रागांग की उत्पत्ति होती है जिसके अशं तथा ग्रह स्वर मध्यम को माना जाता है।

मालवकैशिक– कैशिक जाति से उत्पन्न ग्रामराग है जिसमें षडज स्वर ग्रह, अंश तथा न्यास के स्वर के रूप में प्रयुक्त होता है। प्रस्तुत ग्रामराग में अल्प रूप में धैवत का प्रयोग किया जाता है व षडजादि व काकलीनिषाद से युक्त तथा वीर, रौद्र, अद्भुत तथा वियोग श्रृंगार रस की प्राप्ती होती है। मालवकैशिक विष्णु को अति प्रिय राग माना जाता है।

---

(64) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–2/प्रकरण–2/श्लोक–67–168

मालवश्री रागांग– मालवकैशिक से मालवश्री रांगांग की उत्पत्ति मानी जाती है। सम स्वर का रागांग है, तथा षडज स्वर को अंश व न्यास स्वर के रूप में जाना गया है।

षाडव– यह मध्यमा की कवकृत जाति द्वारा उप्तन्न ग्राम राग है। तार सप्तक के मध्यम को ग्रह स्वर व मध्यम को न्यास तथा अंश स्वर के रूप में जाना जाता है।

तोड़ी रागांग षडव ग्रामराग से उत्पन्न रागांग है, जिसमें मध्यम अंश, ग्रह तथा न्यास का स्वर कहा है। पंचम को कम्पित करते हुए वादन किया जाता है तथा हर्ष की उत्पत्ति करने वाला राग है।

बंगाल रागांग– षाडव ग्रामराग से उत्पन्न रागांग है, जिसमें मध्यम अंश, ग्रह तथा न्यास का स्वर कहा है। पंचम को कम्पित करते हुए वादन किया जाता है।

भिन्नषड्ज– षडजोदीच्यवती जाति से उत्पन्न है। ऋषभ, पंचम वर्जित तथा अंश, न्यास तथा ग्रह स्वर मध्यम है तथा मुर्च्छना उत्तरयता कहा है। वर्ण–संचारी, अलंकार– प्रसन्नान्त, काकलीनिषद व अंन्तरगंधार युक्त, देवता–ब्रह्मा, ऋतु–हेमन्त, रस–विभस्त तथा भयानक, समय–प्रथम प्रहर।

भैरव रागांग– ग्रामराग– भिन्न षडज, जिसमें मध्यम अंश, ग्रह तथा न्यास, ऋषभ, पंचम– वर्जित, प्रयोग– प्रार्थना।

भिन्नपंचम– जाति–मध्यमा तथा पंचमी, अंश तथा ग्रह धैवत, न्यास–पंचम, मूर्च्छना–पौरवी, काकली व शुद्ध दोनों निषाद का प्रयोग, अलंकार–प्रसन्नादि, देवता–विष्णु, रस– विभस्त तथा भयानक, समय–दिन का प्रथम प्रहर।

वराटी रागांग– प्रस्तुत राग की उत्पत्ति भिन्नपंचम राग से मानी गयी है। वाराटी रागांग में अंश स्वर धैवत, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज को माना है। तीनों स्थानों के धैवत का प्रयोग होता है। श्रृंगार रस की प्रधानता प्राप्त होती है।

पंचमषाडव उपराग– मध्यमग्राम के धैवती व आर्षभी जाति से उत्पत्ति मानी गयी है। अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर ऋषभ है। कुछ स्थानों में मध्यम पर भी न्यास किया जाता है। काकली निषाद का अल्प प्रयोग होता है, कलोपनता मूर्च्छना व अलंकार प्रसन्नादि व प्रसन्नान्त कहा गया है। देवता शिव है।

गुर्जरी रागांग– पंचमषाडव राग से उत्पत्ति कही है, ग्रह व अंश स्वर ऋषभ को व न्यास का स्वर मध्मय कहा है। प्रस्तुत राग में मध्य सप्तक का मध्यम व तार सप्तक के ऋषभ की बहुलता होती है। श्रृंगार रस के दर्शन होते है।

टक्क– षडजमध्यमा व धैवती जाति द्वारा उत्पत्ति मानी है। पंचम स्वर का अल्प प्रयोग देखने को मिलता है। है। अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है। प्रसन्नान्त अलंकार प्रयुक्त किया जाता है। आद्य मूर्च्छना से युक्त होता है। समय दिन का आखरी प्रहर, व वीर, रौद्र व अद्भूत रस की निष्पत्ति करने वाला राग है।

गौड़– टक्क ग्राम राग से उत्पन्न है। अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर निषाद है। पंचम वर्जित है।

कोलोहल रागांग–टक्क ग्रामराग से उत्पन्न है। टक्क की समानता वाला राग।

हिन्दोल– षाडजी, गांधारी, मध्यमा, पंचमी व नैषादी नामक जातियों द्वारा निर्मित है। वर्जित स्वर ऋषभ व धैवत को कहा गया है। अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है। वीर, रौद्र व अद्भूत रस की निष्पत्ति करने वाला राग है। बसंत ऋतु कही है।

वसन्त– हिन्दोल से उत्पन्न है। समस्त लक्षण हिन्दोल के ही समान।

शुद्धकैशिक मध्यम– षडजमध्यमा व कैशिक जाति से उत्पन्न ग्रामराग है। ऋषभ तथा पंचम वर्जित स्वर है। ग्रह तथा अंश स्वर षडज व न्यास का स्वर मध्यम कहा है। अलंकार प्रसन्नान्त अलंकार युक्त, आद्य मूर्च्छना वाला ग्रामराग है। वीर, रौद्र व अद्भूत रस प्राप्त होते है। देवता चन्द्रमा को कहा है।

धन्नासी– प्रस्तुत रागांग की उत्पत्ति शुद्ध कैशिकमध्यम द्वारा मानी गयी है। ग्रह व अंश स्वर षडज व न्यास के स्वर मध्यम को कहा है। ऋषभ वर्जित है, वीर रस प्राप्त होता है।

रेवगुप्त– मध्यमा व आर्षभी जाति से उत्पन्न उपराग है। ग्रह व अंश स्वर ऋषभ तथा न्यास का स्वर मध्यम माना गया है। वीर, रौद्र तथा अद्भुत रस युक्त माना गया है। देवता शिव को माना गया है।

देशी– रेवगुप्त उपराग से देशी रागांग की उत्पत्ति कही है। अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर ऋषभ है। पंचम वर्जित है, करूण रस युक्त है।

गांधारपंचम–गंधारी व रक्तगंधारी जातियों द्वारा प्रस्तुत ग्राम राग की उत्पत्ति कही गयी है। अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर गंधार है। अद्भुत्, हास्य व करूण रस से परिपूर्ण राग है। देवता राहु को कहा है।

देशीख्या– गंधारपंचम ग्रामराग द्वारा उत्पत्ति कही है। गमक स्फुरित है, वर्जित स्वर ऋषभ को माना गया है। प्रस्तुत राग अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर गंधार है।[(65)]

भाषांग[(66)]

भाषांग को वर्णित करते हुए उसके प्रकारों को इस प्रकार कहा है–

त्रवणा– भिन्नषडज ग्रामराग से उत्पत्ति कही है। वलि गमक से युक्त भाषांग है। अंश, ग्रह तथा न्यास का स्वर धैवत को माना है। इस राग का गायन मुख्य रूप से विजय में किया जाता है।

डोम्बकृति– प्रस्तुत भाषांग त्रवणा भाषा से उत्पन्न कही है। अंश, ग्रह तथा न्यास का स्वर धैवत को माना है। वर्जित ऋषभ व पंचम को माना है।

ककुभ– प्रस्तुत ग्राम राग की उत्पत्ति मध्यमा, पंचमी और धैवत नामक जातियों द्वारा मानी गयी है। अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर पंचम स्वर को कहा है। शरद ऋतु में करूण रस की प्रधानता कही है तथा देवता यम माने गए है।

रगन्ती– ककुभ ग्रामराग से उत्पत्ति हुयी है, अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर धैवत है। धैवत स्वर स्फुरित गमक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

सावरी– रगन्ती भाषा का भाषांग है। अंश व ग्रह स्वर मध्यम व धैवत को न्यास का स्वर कहा है। करूण रस का सृजन करता है। वर्जित स्वर पंचम है।

भोगवर्धनी– ककुभ की विभाषा कही है, अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर धैवत है। वर्जित स्वर धैवत है। वैराग्य के प्रयोजन से गया बजाया जाता है।

वेलावली– भोग वर्धनी से उत्पत्ति कही है। अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर धैवत है। कम्पित स्वर षडज कहा है। विष्णु जी का प्रिय माना जाता है।

---

(65) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–2/प्रकरण–2/श्लोक–67–106
(66) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–2/प्रकरण–2/श्लोक–107–126

प्रथममंजरी– इसका अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर पंचम है। तार सप्तक के धैवत व ऋषभ को प्रयोग होता है।

बागांली– भिन्नषडज से उत्पत्ति मानी है तथा अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर धैवत है। भावों की उत्पत्ति प्रयोग होता है।

आडिकामोदिका– प्रस्तुत भाषांग की उत्पत्ति बांगाली भाषा से कही है। इसमें अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर धैवत है।

वेगरंजी– टक्क ग्राम राग द्वारा उत्पन्न व वर्जित स्वर धैवत व पंचम है, अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है।

नागध्वनि– वेगरंजी भाषा से उत्पत्ति कही है व अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज को कहा है। वर्जित स्वर के रूप में धैवत व पंचम को माना है तथा वीर रस प्रधान कहा है।

सौवीर– यह षडजमध्यमा जाति से उत्पत्ति मानी है। अल्प स्वर के रूप में गंधार का प्रयोग किया जाता है। इसमें अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है। मूर्च्छना षड्जादि कही है। देवता शिव को कहा है। शान्त, वीर, रौद्र व अद्भुत नामक रस की प्रधानता कही है।

सौवीरी– सौवीरी ग्रामराग द्वारा उत्पन्न भाषांग है। षडज स्वर को ग्रह व न्यास स्वर कहा है।

वराटी– सौवीरी भाषा से उत्पत्ति भाषांग है, जिसे बटुकी भी कहा जाता है, प्रस्तुत भाषांग में अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है। शान्त रस की प्रधानता है।

पिंजरी– हिन्दोल ग्राम राग से उत्पन्न भाषा है। इसमें अंश स्वर गंधार तथा न्यास स्वर षडज को कहा है तथा निषाद को वर्जित कहा गया है।

नट्टा– पिंजरी भाषा से उत्पत्ति मानी गयी है। प्रस्तुत भाषांग में अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है।

कर्णाटबंगाल– वेगरंजी भाषा का राग है, वर्जित स्वर पंचम को कहा है। इस भाषांग में अंश स्वर गंधार व षडज को न्यास का स्वर कहा है। श्रृंगार रस की प्रधानता है।

क्रियांग[67]

रामकृति– तार व मन्द्रस्वर में प्रस्तार होती है। अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है।

गौड़कृति– अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है। वर्जित स्वर ऋषभ व धैवत है।

देवकृति– ग्रह स्वर धैवत को कहा है तथा न्यास स्वर षडज कहा है। वर्जित स्वर ऋषभ व पंचम को कहा है व रस वीर कहा है।

उपांग[68]

वराटी– वराटी के छः उपांग कहे है। कौन्तली वराटी के अर्न्तगत अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है। श्रृंगार रस की प्रधानता। द्रविडी वराटी में अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है। स्फुरित गमक का प्रयोग होता है। सैन्धवी वराटी में अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है। श्रृंगार रस का प्रयोग किया जाता है। कम्पित स्वर षडज तथा धैवत को कहा है। अपस्थान वराटी अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज को कहा है। हतस्वर वराटी में अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है। कम्पित स्वर पंचम व षडज को कहा है। प्रतापी वराटी अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है। इस प्रकार वराटी के छः उपांगों में षडज स्वर ही अंश, ग्रह व न्यास स्वर के रूप में प्राप्त होता है।

तोडी– तोडी के दो प्रकार कहे है। छाया तोडी के निर्माण हेतु, तोडी में ऋषभ व पंचम को वर्जित करना होता है। तुरूष्क तोडी हेतु निषाद व धैवत का बहुलता से प्रयोग व गंधार का अल्प उपयोग किया जाता है।

गुर्जरी– गुजरी के अर्न्तगत चार उपांग कहे है। सर्वपंथम महाराष्ट्र गुर्जरी को कहा है जिसमें अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर ऋषभ है। वर्जित स्वर पंचम है, द्वितीय राग सौराष्ट्र

---

(67) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–2/प्रकरण–2/श्लोक–127–129
(68) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–2/प्रकरण–2/श्लोक–130–145

गुर्जरी का कहा है तथा वर्णन किया है कि ऋषभ के कम्पन्न से सौराष्ट्र गुर्जरी जाननी चहिए। गुर्जरी के अर्न्तगत कम्पित स्वर के रूप में मध्यम स्वर का प्रयोग करने से दक्षिण गुर्जरी की प्राप्ती होती है। इसी प्रकार मद्रं व तार ऋषभ के प्रयोग से द्रविड गुर्जरी की प्राप्ती होती है।

वेलावली– वेलावली के अर्न्तगत चार उपांगो को वर्णित किया गया है। जिसमें भुच्छी वर्णित करते हुए कहा है कि मध्यम स्वर वर्जित माना गया है। षडज तथा पंचम स्वर को आन्दोलित रखा गया है। अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर धैवत है। द्वितीय खम्भाइति में मध्यम व निषाद में आंदालित गमक का प्रयोग होती है। पंचम स्वर वर्जित रखा जाता है। निषाद को अंश व न्यास स्वर के रूप में प्रयोग किया जाता है। श्रृंगार रस की प्रधानता है। छाया वेलावली के लक्षण वेलावली के समान ही कहे है। इसमें मन्द्र व कम्पित स्वर मध्यम को कहा है। प्रताप वेलावली वह है, जिसमें वर्जित स्वर ऋषभ व पंचम है।

भैरवी– यह भैरव के उपांग के रूप में जाना जाता है। अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर धैवत है।

सिंहली कामोद– इसे कामोद का ही उपांग कहा जाता है, व लद्वाण कामोद के ही समान है।

छायानट्टा– नट्टा व छायानट्टा एक ही है, अन्तर मात्र, मन्द्र पंचम का प्रयोग, कम्पित स्वर निषाद और गंधार को कहा गया है। नट्टा का ही उपांग माना जाता है।

कोलाहला– कोलाहला टक्क की भाषा है तथा अंश व ग्रह स्वर षडज है। वर्जित स्वर पंचम है।

रामकृति– इसकी उत्पत्ति कोलाहल से हुयी है। वीर रस कहा हे। अंश का स्वर मध्यम कहा है व न्यास का स्वर षडज कहा है। वर्जित स्वर पंचम है।

छेवाटी– यह हिन्दोल की भाषा है, ऋषभ वर्जित स्वर है, अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है। रस हास्य कहा है।

वल्लाता– छेवाटी का उपंग कही है, ऋषभ वर्जित मानी है। अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है, श्रृंगार रस की प्रधानता।

शुद्धपंचम– मध्यमा और पंचमी जाति से उत्पन्न माना जाता है। काकलीनिषाद व अन्तरगंधार प्रयोग होते है। अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर पंचम है। श्रृंगार व हास्य रस से विभूषित ग्रामराग है।

दाक्षिणात्या– शुद्धपंचम की भाषा अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर धैवत है।

आन्धालिक– दक्षिणात्या की विभाषा मानी है। अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर पंचम है। निषाद का अल्प उपयोग किया जाता है।

मल्हारी– आन्धालिका की ही उपांग है। गंधार स्वर वर्जित है व अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर पंचम है। श्रृंगार रस की प्रधानता है।

मल्हार– आन्धालिका का उपांग राग है। षडज व पंचम वर्जित है, अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर धैवत है।

गौड़ राग– गौड राग के अर्न्तगत चार उपांग कहे है। कर्णाट गौड, देशवाल गौड, तुरूष्क, तथा द्राविड़ गौड़। कर्णाट गौड के अर्न्तगत अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है। देशवाल गौड़ के अर्न्तगत आन्दोलित गमक का प्रयोग होता है। तुरूष्क गौड में ऋषभ पंचम वर्जित है व अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर निषाद है। द्रविड गौड अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर निषाद है। गमक तिरिप गंधार व षडज व पंचम स्फूरित गमक कही है।

आधुना–प्रसिद्ध देशी राग[(69)]

श्रीराग– श्रीराग षाडजी जाति से उत्पन्न षडजग्राम का राग है, अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है। रस वीर तथा पंचम अल्प उपयोग किया जाता है।

प्रथम बंगाल– षडजमध्यमा जाति द्वारा उत्पत्ति को कहा गया है। मन्द्र स्वर वर्जित रखे जाते है। अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है।

---

(69) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–2/प्रकरण–2/श्लोक–159–168

द्वितीय बंगाल– कैशिक जाति द्वारा उत्पन्न ग्रामराग है। जिसमें अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है।

मध्यमषाडव– प्रस्तुत राग में अंश स्वर ऋषभ को कहा है, व न्यास हेतु पंचम का वर्णन किया गया है। पंचम अल्प रूप में उपयोग किया जाता है तथा वीर, अद्भुत तथा रौद्र रस में इस राग की प्रस्तुती की जाती है।

शुद्ध भैरव– प्रस्तुत राग में अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर धैवत है, सभी स्वर प्रबल माने गए है।

मेघराग– इस राग की जाति–धैवती कही है तथा अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर धैवत है।, इसमें मंद्र स्वर वर्जित माने गए है।

सोमराग– जाति षडजी है। अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है व वीर रस की प्रधानता वाला ग्रामराग है।

प्रथम कामोद– जाति–षडजमध्यमा, ग्रह स्वर– षडज, अंश स्वर–धैवत, न्यास स्वर–षडज।

द्वितीय कामोद– षडजी–जाति, अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज, मंद्र गंधार प्रबल।

आम्रपंचम– मन्द्र तथा मध्य स्वरों द्वारा उत्पन्न, अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर गंधार, मंद्र स्वर वर्जित, रस– हास्य तथा अद्भुत।

आधुना प्रसिद्ध भाषा और विभाषाएं[(70)]

कैशिक– शुद्ध पंचम भाषा, मध्यम पंचम की बहुलता, अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर पंचम।

सौराष्ट्री– प्रथम सौराष्ट्री पंचम भाषा, अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर पंचम, ऋषभ वर्जित, द्वितीय सौराष्ट्री, टक्क भाषा, अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज, रस करूण।

ललिता–प्रथम ललिता टक्क भाषा, अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज, ऋषभ पंचम वर्जित, द्वितीय लालिता भिन्नषडज भाषा, अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर धैवत।

---

(70) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/अध्याय–2/प्रकरण–2/श्लोक–170–194

सैन्धवी– सैन्धवी भाषा के चार भेद कहे है, जिनकी भाषा क्रमशः टक्क, पंचम, मालवकैशिक तथा भिन्नषडज कही है। प्रथम सैन्धवी में अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज, व ऋषभ व पंचम वर्जित है, द्वितीय सैन्धवी के अर्न्तगत अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर पंचम है व तार निषाद व तार पंचम विहित, तृतीय सैन्धवी में अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज है, निषाद व गंधार वर्जित, तथा चतुर्थ सैन्धव अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर धैवत, ऋषभ पंचम वर्जित।

गौडी– गौडी के दो भेद कहे गए है– प्रथम गौडी हिन्दोल राग की भाषा, अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज, वर्जित– ऋषभ पंचम, तथा द्वितीय गौडी मालवकैशिक भाषा अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षडज।

त्रावणी–पंचम राग की भाषा, अंश तथा ग्रह स्वर– षड्ज तथा न्यास स्वर–पंचम।

हर्षपुरी– मालवकैशिक–भाषा, अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर षड्ज।

भम्माणी– पंचम–विभाषा, अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर– पंचम, विहित–**स़, सं, मं, निं, पं,** वर्जित–**रे।**

टक्ककैशिक–जाति–धैवती व मध्यमा, अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर धैवत, काकलीनिषाद व अंतरगंधार का प्रयोग, अलंकार–आरोह प्रसन्नादि, मूर्च्छना–उत्तरयता, रस–भयानक, विभस्त, देवता–कामदेव, महाशिव।

मालवा– टक्ककैशिक– भाषा, अंश, ग्रह तथा न्यास स्वर धैवत, संगत– षडज–धैवत, ऋषभ–पंचम।

द्राविड़ी– टक्ककैशिक– विभाषा, ग्रह व अशं स्वर– गंधार, न्यास स्वर–धैवत।

इस प्रकार रागविवेकाध्याय का वर्णन पं० शारंगदेव जी द्वारा संगीत रत्नाकर के द्वितीय अध्याय के अर्न्तगत प्रस्तुत किया गया है। जिसमें राग सम्बन्धी सभी तथ्यों के साथ–साथ ग्रामराग, भाषा राग, रागांग, विभाषा इत्यादि को विस्तार से कहा है।

3.5.3 प्रकीर्णकाध्याय

प्रस्तुत अध्याय के प्रथम श्लोक के अर्न्तगत वर्णित करते हुए कहा गया है कि जो विद्वानों में श्रेष्ठ अर्थात् उत्तम है, उन पं० शारंगदेव जी द्वारा देशी व मार्गी संगीत विधाओं आधारित जो निबद्ध है और कर्णप्रिय व हर्ष प्रदान करने वाला है, उसे प्रकीर्णकाध्याय के अर्न्तगत प्रस्तुत किया गया है।

3.5.3.1 वाग्गेकार के लक्षण– वाग्गेकार के लक्षणों को पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्णित किया गया है। वाग्गेकार के लक्षणों को वर्णित करते हुए कहा है कि वाणी काव्य अर्थात् मातु व उसके गेय रूप को धातु की संज्ञा दी गयी है तथा इन्हीं मातु व धातु के संयोजक अर्थात् गीत व उसके रचनाकर को वग्गेकार कहा जाता है। उत्तम वाग्गेकार की विशेषताओं को पं० शारंगदेव जी द्वारा इस प्रकार कहा गया है कि वाग्गेकार के 28 गुण मुख्य होते है। जिनके आधार पर ही वाग्गेकार को श्रेष्ठ स्वीकारा जाता है, कि जो व्याकरण व शब्दों के संग्रहण का ज्ञान हो, छन्द ज्ञाता, अलंकार निपूर्ण, रस–भाव ज्ञान, रीति चातुर्य, भाषा विज्ञान का ज्ञान, कला शास्त्रों में निपूर्ण, गायन वादन तथा नृत्य का ज्ञाता, स्वर ज्ञान, शब्द–निशब्द क्रिया निपूर्ण, काकू ज्ञान, समस्त प्रतिभाओं से सम्पन्न, उत्तम गायक, देशी राग ज्ञान, वाक्पटुता, क्रोध ईर्ष्या से रहित, ज्ञानी, उक्ति नितार्ण में निपूर्ण, नए गेय रचना में निपूर्ण इत्यादि, वाग्गेकार के लक्षण कहे गए है, जो उत्तम वाग्गेकार के रूप में वर्णित किए गए है। धातु अर्थात् गायन में निपूर्ण परन्तु मातु अर्थात् रचना में मन्द हो वह मध्यम वाग्गेकार के लक्षण कहे है व जो वाग्गेकार मातु में निपूर्ण हो परन्तु धातु में मन्द हो वह अधम वाग्गेकार कहा जाता है।

इस प्रकार वाग्गेकार के लक्षणों को पं० शारंगदेव जी ने कहे है तथा उस कवि को श्रेष्ठ स्वीकारा गया है, जो विषयवस्तु की रचनाओं में परिपूर्ण होता है तथा उस कवि को मध्यम कहा है, जो वर्ण को करे व जो किसी की रचना में अपने गायन को प्रस्तुत कर सके वह कुट्टिकार कहा जाता है। पं० शारंगदेव जी द्वारा गान्धर्व व स्वरादि का वर्णन करते हुए कहा गया है कि मार्गी तथा देशी दोनों संगीत का ज्ञाता गान्धर्व के रूप में जाने व जो

मात्र मार्गी संगीत का ज्ञाता हो उसे स्वरादि कहा जाएगा।[(71)] पं० शारंगदेव जी द्वारा गायक के गुण व भेदों को इस प्रकार कहा है। गायक को मधुर वाणी व कंठ वाला, उत्तम शरीर युक्त, रागों को पूर्ण रूप से व्यक्त करने में निपूर्ण, राग, रागांग, भाषांग, क्रियांग, व उपांग का ज्ञान, प्रबन्ध का ज्ञान आलाप्ति ज्ञाता, समस्त स्थानों की गमकों का ज्ञान, स्वाधीन, कंठ तालविद्, एकाग्रचित, मेहनती, प्रबन्धों व सूडों का ज्ञाता, काकू निपूर्ण, कुशलता से गान प्रस्तुत करें, दोष मुक्त, अभ्यास में दृढ़, लय–युक्त, विभिन्न स्थायों में संचार करें, अत्मविश्वासपूर्ण, श्रोताओं के मन–मस्तिष्क को आकर्षित करने की योगसता से पूर्ण, राग अभिव्यक्ति में निपूर्ण, गीत के शास्त्र को जानने वाला, गायन में श्रेष्ठ। इस प्रकार गुणों से पूर्ण व दोषों से मुक्त गायक को गायकों में उत्तम गुण सम्पन्न कहा है। कुछ गुणों से न्यून परन्तु दोषों से मुक्त गायक को मध्यम तथा दोषों से पूर्ण गायक को महामहेश्वर पं० शारंगदेव जी द्वारा अधम के रूप में वर्णित किया गया है।[(72)]

गायक के पाँच भेदों को वर्णित करते हुए कहा है कि जिसमें शिक्षाकर, अनुकार, रसिक, रंजक, तथा भावुक नामक गुण सम्मिलित है। इन भेदों को वर्णित करते हुए कहा है कि जो शिक्षण का कार्य करने में अन्यून रूप से कुशल हो वह शिक्षाकार कहा गया है। अनुकार अर्थात् अन्य गायक के प्रयत्नों का अनुसरण करें। रसिक अर्थात् गायक रस भावों से परिपूर्ण हो। रंजक अर्थात् रस पूर्ण गायन को सुन श्रोताओं के चित्त को रंजक करने में समर्थ हो तथा भावक अर्थात् भावों का संचार अधिक से अधिक कर सके।[(73)]

गायक के तीन प्रकारों को वर्णित करते हुए कहा है कि गायक एकल अर्थात् एकाकी रूप में गायन प्रस्तुत करने में सक्षम हो। यमल अर्थात् युगल रूप में गान प्रस्तुत करने के योग्य हो तथा वृन्द अर्थात् समूह में गायन प्रस्तुत करने की भी कुशलता रखने वाला होना चाहिए। साथ ही गायिका के लक्षणों को भी व्यक्त करते हुए कहा है, कि गायिका को भी गायक के समान गुणा वाला होना चाहिए व गायिका को सौन्दर्यपूर्ण, मधुरतम कण्ठ से युक्त, चतुर इत्यादि गायिका के गुण व लक्षणों को कहा है। तत्पश्चात् गायक के दोषों को

---

(71) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–2/अध्याय–3/श्लोक–2–12
(72) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–2/अध्याय–3/श्लोक–13–17
(73) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–2/अध्याय–3/श्लोक–19–21

वर्णित किया है। गायक को दोषों से मुक्त होना चाहिए व गायक **संदृष्ट–** दांतों को चबाकर गाने वाला, **उद्घुष्ट–** चिल्ला के गाने वाला या मुख को पूरा खोलकर गाने वाला, **सूत्कारी–** सू–सू की ध्वनि को निकालने वाला, **भीत–** भयभीत रूप में गायन प्रस्तुत करने वाला, **शंकित–** दुविधा या जल्दबाजी से स्वर प्रयोग करने वाला, **कम्पित–** शरीर व कण्ठ ध्वनि में कम्पन्न करने वाला, **कराली–** भयानक मुख धारण कर गायन करने वाला, **विकल–** श्रुतियों में कुछ अधिक व कमी कर गायने करने वाला, **काकी–** कौएं जैसी आवाज वाली गायकी, **विताल–** ताल पथ से पथ भ्रष्ट हो, **करभ–** गर्दन को ऊंचा करके गान करने वाला, **उट्भट–** भेंड़ सी कांपती आवाज युक्त गायकी। **झोम्बक–** चेहरे मोहरों पर विभिन्न भावों को दर्शित करने वाला, **तुम्बकी–** फूले गले का गायक, **वक्री–** गला टेढ़ा करने वाला, **प्रसारी–** हाथों को फैलाने वाला, **निमीलक–** आँखें बंद करने वाला, **विरस–** नीरस गायकी प्रस्तुत करें, **अव्यक्त–** गदगद की ध्वनि से युक्त गायकी, **स्थानभ्रष्ट–**तीनों स्थानों की गायकी में समर्थ न हो, **अव्यवस्थित–** जो गायकी मिश्रित हो अर्थात् शुद्ध व छायालंग रागों को मिश्रित करें व अन्य रागों को भी मिश्रित करें, **अनवधान–** गमक व स्थायों कों असावधानीपूर्वक गाने वाला, **सानुनासिक–** नाक से स्वर लगाने वाला।**(74)**

इसके पश्चात् शब्द अर्थात् कंठ ध्वनि को कहा गया है, जो खाहुल, नारट, बोम्बक, तथा मिश्रक है। इन चारों के लक्षणों को वर्णित करते हुए, ध्वनि को कफ़, पित्त, वात तथा मिश्रित रूप में निकास को कहा गया है। खाहुल अर्थात् वह ध्वनि जो कफ उत्पन्न होती है तथा चिकनी, मधुरतापूर्ण व कोमलता के गुणों को धारण किए हो वह खाहुल है। जिस ध्वनि की उत्पत्ति पित्त द्वारा हो तथा तीनों स्थानों पर विचरण में साम हो वह नाराट कही गयी है। बोम्बक की उत्पत्ति वायु द्वारा मानी है, जो ऊँची स्थूल तथा निःसार कही गयी है, तथा तीनों ध्वनियों के मिश्रण द्वारा निर्मित ध्वनि मिश्रत कही जाती है। बोम्बक को रूखा व खाहुल को चिकने गुणों से युक्त कहा है व कण्ठ ध्वनि के इन्हीं चार प्रकारों के आधार पर निर्मित कई प्रकारों का विस्तार से वर्णन किया गया है।**(75)** तत्पश्चात् शब्दगुणों को पं० शारंगदेव जी द्वारा कहा गया है। जिसमें शब्द गुणों के पन्द्राह प्रकारों को कहा गया है। जो कि–

---

(74) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–2/अध्याय–3/श्लोक–22–38
(75) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–2/अध्याय–3/श्लोक–39–67

→ **मृष्ट–** जो कर्णप्रिय हो व प्रसन्नता प्रदान करने वाली हो।

→ **मधुर–** मन्द्र, मध्य तथा तार तीनों स्थान के स्वरों में मधुरता का संचार हो।

→ **चेहाल–** जो मध्यम हो अर्थात् अधिक स्थूल न हो और न ही अधिक पतली हो, परन्तु आनन्द प्रदान करने वाली, प्रौढ़ व पूर्ण हो जिसमें पुरूष की ध्वनि से स्त्रियों की ध्वनि को अधिक प्रभावशाली स्वीकारा गया है।

→ **त्रिस्थानक–** तीनों स्थानों पर रक्ति तथा छवि जैसे गुणों से परिपूर्ण हो।

→ **सुखावह–** चित्त को सुख प्रदान करने वाला।

→ **प्रचुर–** स्थूल स्वरों से युक्त प्रचुर महादेव शंकर को अतिप्रिय है।

→ **कोमल–** कोयल के समान कण्ठ की ध्वनि को कोमल कहा है।

→ **गाढ़–** जो स्वर प्रबल हो व प्रसारित होता है, उसे गाढ़ स्वर कहा गया है।

→ **श्रावक–** जिस स्वर की ध्वनि दूर से सुनी जा सके।

→ **करूण–** ऐसे स्वर जो श्रोताओं के चित्त को करूणा के रस से भर दें।

→ **घन–** सुनने योग्य स्वरों को घन कहा है।

→ **स्निग्ध–** वह स्वर जो श्रवण में रूखे न हो व दूर तक सुने जा सके।

→ **श्लक्ष्ण–** बिना किसी रूकावट के चलने वाले स्वर।

→ **रक्तिमान्–** वह स्वर जो रति की उत्पत्ति करें।

→ **छविमान्–** सुकोमल कण्ठ से युक्त ध्वनि।[(76)]

शब्द गुणों के पश्चात् शब्द दोषों को कहा गया है। जिसके आठ भेद पं० शारंगदेव जी द्वारा कहे गए है। **रूक्ष–** रूखापन, **स्फुटित–** कुछ फटी सी ध्वनि, **निःसार–** खोखली, **काकोली–** कर्कशी ध्वनि, **केटि–** मधुरता हीन, **केणि–** तीनों स्थानों पर पहुँचने में असमर्थ, **कृश–** सूक्ष्तम ध्वनि, **भग्न–** नीरस ध्वनि तथा शारीर के लक्षणों को व्यक्त करते हुए कहा है

(76) चौधरी सुभद्रा / पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / खण्ड–2 / अध्याय–3 / श्लोक–68–77

कि जो अभ्यास न करने के कारण रागों को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त न हो वह शारीर है। जिसकी उत्पत्ति शरीर के द्वारा ही होती है। **रंजकता, अनुरणन, कान्ति, तार–स्थानीय, रमणीयता, सुकुमारपूर्ण, गम्भीर, स्निग्धता, घनता**, इत्यादि को शारीर के गुण कहा है तथा इन्हीं सभी गुणों के विपरीत दोषों को व्यक्त किया गया है। विद्या के दान व शिव की भक्ति के द्वारा सुशारीर को प्राप्त किया जा सकता है।(77)

3.5.3.2 गमक

गमक के पन्द्रह प्रकारों को कहा गया है–,

1. तिरिप	**2.** स्फुरित	**3.** त्रिभिन्न
4. कम्पित	**5.** आन्दोलित	**6.** लीन
7. वलि	**8.** नामित	**9.** मुद्रित
10.कुरूल	**11.**उल्लासित	**12.**आहत
13.हुम्फित	**14.**मिश्रित	**15.**प्लावित

3.5.3.3 स्थाय– स्थाय भेद को वर्णित करते हुए कहा है, जो राग के समस्त अवयवों को धारण करता है, स्थाय कहा जाता है तथा वाग नाम से गमक को सम्बोधित किया गया है। स्थायों के विषय में कहा है कि–

प्रसिद्ध असंकीर्ण स्थाय के दस भेद

1. ढाल सम्बन्धी – मोती या गोलाकर गति,

2. लवनी सम्बन्धी– कोमलतम स्वर लगाव,

3. वहनी सम्बन्धी– आरोह–अवरोह में उत्पन्न होने वाला स्वरों को कम्पन्न

---

(77) चौधरी सुभद्रा / पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / खण्ड़–2 / अध्याय–3 / श्लोक–78–89

4. वाद्य सम्बन्धी– रागों की रंजित करने वाली ध्वनि

5. यंत्र सम्बन्धी– वीणा जैसे वाद्यों में दर्शित होने वाला

6. छाया सम्बन्धी– काकु। जिसके छः भेद स्वर, राग, अन्यराग, देश क्षेत्र तथा यंत्र नामक काकु कहे है।

7. स्वरलंघित सम्बन्धी– स्वरों को लांघने वाला

8. प्रेरित सम्बन्धी– सभी स्वरों का एक साथ प्रयोग

9. तीक्ष्ण सम्बन्धी तर सप्ताक का श्रुति पूर्ण लक्षण

10. शब्द सम्बन्धी जिस ध्वनि पर पूर्ण स्थाय का अन्त हुआ हो

प्रसिद्ध संकीर्ण स्थाय के तेंतीस भेद

1. भजन सम्बन्धी	**2.** स्थापना सम्बन्धी	**3.** गति सम्बन्धी	**4.** नाद सम्बन्धी	**5.** ध्वनि सम्बन्धी
6. छवि सम्बन्धी	**7.** रक्ति सम्बन्धी	**8.** द्रुत सम्बन्धी	**9.** भृत सम्बन्धी	**10.** अंश सम्बन्धी
11. अवधान सम्बन्धी	**12.** अपस्थान सम्बन्धी	**13.** निकृति सम्बन्धी	**14.** करूणा सम्बन्धी	**15.** विविधत्व सम्बन्धी
16. काण्डा सम्बन्धी	**17.** ललितगाढ सम्बन्धी	**18.** ललित सम्बन्धी	**19.** उपशम सम्बन्धी	**20.** गात्र सम्बन्धी
21. लुलित सम्बन्धी	**22.** निर्जवन सम्बन्धी	**23.** गाढ़ सम्बन्धी	**24.** सम सम्बन्धी	**25.** कोमल सम्बन्धी
26. प्रसृत सम्बन्धी	**27.** स्निग्ध सम्बन्धी	**28.** चोक्ष सम्बन्धी	**29.** उचित सम्बन्धी	**30.** सुदेशिक सम्बन्धी
31. अपेक्षित सम्बन्धी	**32.** घोष सम्बन्धी	**33.** स्वर सम्बन्धी		

अप्रसिद्ध असंकीर्ण स्थाय के बीस भेद–

1. वह	**2.** अक्षराडम्बर	**3.** उल्लासित	**4.** तरंगित	**5.** प्रलम्बित
6. अवस्खलित	**7.** त्रोटित	**8.** सम्प्रविष्टक	**9.** उत्प्रविष्ट	**10.** निःसरण
11. भ्रामित	**12.** दीर्घ कम्पित	**13.** प्रति–ग्राह्योल्लासित	**14.** अवलम्बविलम्बक	**15.** त्रोटितप्रतीष्ट
16. प्रसृताकुंचित	**17.** स्थिर	**18.** स्थायुक	**19.** क्षिप्त	**20.** सूक्ष्मान्त

अप्रसिद्ध संकीर्ण स्थाय के तेंतीस भेदों को कहा गया है।[(78)]

1. प्रकृतिस्थ सम्बन्धी	**2.** कला सम्बन्धी	**3.** आक्रमण सम्बन्धी	**4.** घटना सम्बन्धी	**5.** सुख सम्बन्धी
6. चालि सम्बन्धी	**7.** जीवस्वर सम्बन्धी	**8.** वेदध्वनि सम्बन्धी	**9.** घनत्व सम्बन्धी	**10.** शिथिल सम्बन्धी
11. अवघट	**12.** प्लुत	**13.** रागेष्ट	**14.** अपस्वराभास	**15.** बद्ध
16. कलरव	**17.** छान्दस	**18.** सुकराभास	**19.** संहित	**20.** लघु
21. अन्तर	**22.** वक्र	**23.** दीप्तप्रसन्नमृदु	**24.** गुरू	**25.** ह्रस्व
26. शिथिलागाढ	**27.** दीर्घ	**28.** असाधारण	**29.** साधारण	**30.** निराधार
31. दुस्कराभास	**32.** मिश्र	**33.** प्रसन्नमृदु		

3.5.3.4 मिश्र स्थाय

पं० शारंगदेव जी द्वारा कहा गया है, कि मिश्र स्थाय एक वृहद स्थाय है, जिसके भेदों को पूर्ण रूप से वर्णन सम्भव नहीं है। इन्हीं के कुछ स्थायों को वर्णित करने का प्रयास किया

(78)चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–2/अध्याय–3/श्लोक–90–112

गया है। मिश्र स्थाय के अर्न्तगत भेदों के नाम स्थायों के प्रमुख होता है, उसी के आधार पर स्थाय के नाम को रखकर, उसी नाम का प्रयोग उच्चारण हेतु किया जाता है। इस कारण कुछ स्थायों के नाम समान ही प्राप्त होते है।

1. त्रोटितोल्लासित	**2.** भ्रामितस्थायुक	**3.** प्रतिग्राह्योल्लासितश्चो त्रोटितप्रतीष्टोत्प्रविष्टनिः सरण
4. तीक्ष्णप्रेरितक	**5.** तीक्ष्णप्रेरितस्वरलंघित	**6.** सूक्ष्मान्ततरंगितविलम्बित
7. यन्त्रवाद्यशब्दभव	**8.** ढालशब्दोत्थयंत्रोत्थ	**9.** वहनीढाल–सम्बन्धी
10. शब्दयन्त्र–सम्बन्धी,	**11.** वलिहुम्फितमुद्रित	**12.** प्लावितोल्लासितवलि,
13. आन्दोलितप्लावितक	**14.** समुल्लासितनामित	**15.** त्रिभिन्नलीनस्फुरित
16. प्रसृताकुंचितस्थिर	**17.** छायायन्त्र सम्बन्धी	**18.** नामितान्दोलितवलि
19. वाद्यशब्दभव	**20.** वहनीयन्त्र सम्बन्धी	**21.** तिरिपस्फुरित,
22. सम्प्रविष्टोत्प्रविष्ट	**23.** शब्दढाल सम्बन्धी	**24.** लीनकम्पित
25. वहाक्षराडम्बर	**26.** सम्प्रविष्टतरंगित,	**27.** तिरिपान्दोलित,
28. वहनीछाया सम्बन्धी	**29.** दीर्घकम्पितसूक्ष्मान्त	**30.** प्रलम्बितावस्खलित
31. लीनकम्पितलीन	**32.** तिरिपान्दोलितवलि त्रिभिन्नकुरुल	**33.** त्रिभिन्नकुरुलाहत
34. कम्पिताहत	**35.** स्फुरिताहत	**36.** त्क्षिप्तोऽलम्बविलम्बक
37. लीनस्फुरित	**38.** वलिनामितकम्पित	**39.** प्लावितान्दोलित
40. भ्रामितक्षिप्त	**41.** ढालच्छायायन्त्रवाद्य शब्दशब्दभव[(79)]	

(79) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–2/अध्याय–3/श्लोक–113–189

इसी क्रम में आलाप्ति के कुछ भेद व लक्षण भी कहे गए है। किसी भी राग को प्रस्तुत करने व उसका आलापन करना आलाप्ति कहा जाता है। इसी प्रकार आलाप्ति के दो भेद कहे गए है–रागालाप्ति व रूपकालाप्ति। जिसमें राग के विशेषण का प्रस्तुतीकरण हो, वह रागालाप्ति तथा जिसमें रूपक का प्रयोग हो वह रूपपकालाप्ति के रूप में वर्णित किया गया है।

3.5.3.5 रागालाप्ति– जिस आलाप्ति के अर्न्तगत रूपक को न प्रयोग किया जाए व रूपक उपेक्षित हो वह रागालाप्ति कहा जाता है। भरत जैसे गीत वेत्ताओं के अनुसार चार स्वर स्थानों से अवयवभूत प्राप्त होते है। स्थायी स्वर वह स्वर है, जिस स्वर से राग को स्थापित किया जाता है, तथा चौथा स्वर द्व्यर्ध कहलाता है व इस स्वर से नीचे की ओर विचरण करना मुख चाल कहा जाता है। जिसे प्रथम स्वर स्थान कहा जाता है। द्व्यर्ध स्वर पर न्यास करना द्वितीय स्वरस्थान कहा गया है। द्विगुण स्वर वह है, जो स्थायी से आठवाँ स्वर होता है। अर्धस्थित वह है जो द्व्यर्ध व द्विगुण के मध्य स्थित होता है तथा इस पर न्यसन करने पर तृतीय स्वर स्थान की प्राप्ती होती है। अष्टम् तथा द्विगुण स्वरों के न्यसन द्वारा चतुर्थ स्वर स्थान प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार संगीतविदों द्वारा चार स्वरस्थान से रागालाप्ति की प्राप्ती होती है। राग स्थापना हेतु विभिन्न भंगियों व अंश स्वर का प्रयोग किया जाता है।

3.5.3.6 रूपकालप्ति– वह राग तथा ताल जिसका निर्माण रूपक के द्वारा हुआ हो, वह रूपकालप्ति कहलाता है। रूपकालप्ति के दो भेद कहे है–प्रतिग्रहणिका व भंजनी। विद्वानों के द्वारा कहा गया है कि रूपक अर्थात् प्रबन्ध के आधार पर आलाप्ति में स्थाय को रच कर स्वीकार करने पर वह प्रतिग्रहणिका रूपकालप्ति कही जाती है।

इसी क्रम में भंजनी रूपकालप्ति के दो भेद कहे गए है– **1.** स्थाय भंजनी **2.** रूपक भंजनी। इस प्रकार आलाप्ति को वर्णित करते हुए, गुनीजनों द्वारा कहा गया है कि आलप्ति वर्ण, अलंकार, गमक तथा स्थाय के रोचक प्रकारों से युक्त व मनोहर होती है।**(80)**

---

(80) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–2/अध्याय–3/श्लोक–190–202

3.5.3.7 बृन्द– पं० शारंगदेव जी द्वारा बृन्द का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वाद्य वादकों तथा गायकों के समूह को बृन्द कहा जाता है तथा बृन्द के तीन भेदों को भी कहा गया है– **1. उत्तम–** जिस बृन्द समूह में चार मुख्य गायक, आठ सम गायक, बारह गायिकाऐं, चार वंश वादक, तथा चार ही मार्दंगिक हो उस बृन्द को उत्तम बृन्द की संज्ञा दी गयी है। **2. मध्यम–** उत्तम की आधी संख्या वाले बृन्द को मध्यम बृन्द की संज्ञा दी गयी है तथा **3. कनिष्ठ–** वह बृन्द जिसमें मात्र एक ही गायक, तीन सम गायक, चार गायिकाऐं दो वंश वादक तथा दो ही मार्दलिक को उन्हें कनिष्ठ बृन्द की संज्ञा दी गयी है।

इसी प्रकार गायिका बृन्द के भी तीन भेद कहे है, उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ कहा है। उत्तम बृन्द से भी संख्या में जो बृन्द हो उसे कोलाहल की संज्ञा दी गयी है। बृन्द के छः गुणों को भी कहा गया है जिसमें कहा गया है कि बृन्द के सदस्यों द्वारा प्रमुख गायक का अनुसरण करना चाहिए, स्वर की चाल के साथ मिल जाना चाहिए, लय तथा ताल के मार्ग पर ही रहना चाहिए, प्रस्तुती के दौरान होने वाली त्रुटियों को छिपाने का गुण, मन्द्र, मध्य तथा तार तीनों स्थानों पर पकड़, सभी के सर्दश्य ही प्रस्तुती हो। इसी प्रकार भरत मुनि द्वारा भी वाद्यों के संर्दभ में बृन्द को कुतुप की संज्ञा दी गयी है। जिसमें तत्, अवनद्ध तथा नाट्य के संदर्भ में बृन्द के वर्णन को प्रस्तुत किया गया है। जिसमें समस्त स्वर तथा ताल वाद्यों के समूह में वादन का विस्तार से वर्णन किया गया है।[(81)]

इस प्रकार पं० शारंगदेव जी द्वारा संगीत रत्नाकर के प्रथम अध्याय के तीसरे प्रकरण के अर्न्तगत वाग्गेयकार, शब्द गुण–दोष, स्थाय भेद, स्थायों के प्रकार काकू आलप्ति तथा बृन्द आदि का वर्णन विस्तार से किया गया है।

3.5.4 प्रबन्धाध्याय

प्रबन्ध अध्याय पं० शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर के चौथे अध्याय के रूप में है जिसके अर्न्तगत प्रबन्ध सम्बन्धित सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया गया है। जिसमें प्रबंधों के प्रकार, लक्षण इत्यादि को विस्तार से कहा है।

---

(81) चौधरी सुभद्रा / पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / खण्ड़–2 / अध्याय–3 / श्लोक–203–223

3.5.4.1 गीत प्रबन्ध– स्वरों के रंजक पद को गीत के रूप में वर्णित किया गया है, तथा गीत के दो भेद कहे है। प्रथम गान्धर्व जिसके अर्न्तगत गान्धर्व को व्याख्यित किया है, कि देवादि द्वारा निर्मित समूह हो उसे गान्धर्व कहा है तथा वाग्गेयकारों के द्वारा लिखे गए राग जो लोक रंजन में समर्थ हो उसे गान कहा जाएगा। इसके पश्चात् गान के भेदों को वर्णित किया है कि गान दो प्रकार के है, निबद्ध तथा अनिबद्ध। निबद्ध के अर्न्तगत उस गान को स्थान दिया गया है, जो धातुओं तथा अंगों के द्वारा बद्ध किया गया हो अर्थात् जो नियमबद्ध हो वह निबद्ध गान समझा जाता है तथा आलप्ति आदि जो किसी भी रूप में बंधे न हो अर्थात् नियमों में बंधा न हो वह अनिबद्ध गान कहा जाता है।**(82)**

3.5.4.2 धातु लक्षण एवं भेद– धातु का अर्थ प्रबन्ध का अशं कहा गया है। धातु के चार प्रकार कहे है– उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव तथा आभोग। प्रबन्ध के अंश में इन धातुओं को वर्णित करने में कहा है कि प्रबन्ध को इन्हीं चार धातुओं में बताया गया है, जिसमें प्रबन्ध गायन में सर्वप्रथम उद्ग्राह फिर मेलापक इसके पश्चात् ध्रुव तथा अन्त में आभोग को प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार धातुओं को लक्षण तथा भेद के साथ वर्णित किया गया है।**(83)**

3.5.4.3 प्रबन्ध भेद एवं अंग– प्रबन्ध के तीन प्रकारों को पं० शारंगदेव जी द्वारा कहा गया है, जिसमें द्विधातु, त्रिधातु तथा चतुर्धातु सम्मिलित है। प्रबन्ध के अंगों में छः भेद बताए है अर्थात् प्रबन्ध नामक पुरूष रूप के छः अंगों की संज्ञा दी है और स्वर, विरूद, पद, तेन, पाट तथा ताल को अंग कहा है, जिसमें तेन तथा पद को नेत्र, पाट तथा विरूद को दोनों हाथ, ताल तथा स्वर को चरण के रूप में व्याख्यित किया है।**(84)** पं० शारंगदेव जी द्वारा षडज, ऋषभ आदि स्वरों को स, रे, ग, म आदि स्वर के रूप में वर्णित किया है, उन्हीं स्वरों को शब्द कहा गया है। गुण के रूप में विरूद को कहा है, वाचक अर्थात् पद कहा है। तेन को पद में मंगल अर्थों में प्रस्तुत किया है।**(85)** इसी प्रकार प्रबन्ध की जातियों का वर्णन करते हुए, पाँच जातियों को पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्णित किया गया है, जिसमें

---

(82) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–2/अध्याय–4/श्लोक–1–6
(83) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–2/अध्याय–4/श्लोक–7–11
(84) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–2/अध्याय–4/श्लोक–12–15
(85) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–2/अध्याय–4/श्लोक–15–19

मेदिनी, आनन्दिनी, दीपनी, भावनी तथा तारावली के नाम उल्लेखित है तथा सभी के अंगों की संख्या का भी वर्णन करते हुए छः अंगों से युक्त मेदिनी, पाँच अंगों से युक्त आनन्दिनी, चार अंगों वाली दीपनी, तीन अंगों से युक्त भावनी तथा दो अंगों वाली तारावली को कहा है। कुछ गुणीजनों द्वारा इन्हें ही श्रुति, नीति, सेना, कविता तथा चम्पू कहा गया है।[86] प्रबन्ध के दो भेद निर्युक्त तथा अनिर्युक्त कहे है। छन्द, ताल आदि नियमों से युक्त हो उसे निर्युक्त तथा इन्हीं नियमों से मुक्त हो उसे अनिर्युक्त कहा गया है। प्रबन्ध अन्य तीन भेद सूडस्थ, आलिस्थ तथा विप्रकीर्ण को कहा है।

सूडस्थ वह है, जो आठ गुणों के द्वारा जिनका प्रबन्धन किया जाता है,[87] जिसमें–

एला– प्रस्तुत प्रबन्ध के पहला पद अनुप्रास अलंकार दो खण्ड में होता है, जिसमें धातु समान ही प्रयोग किया जाता है व तीन पद पल्लव होते है व तीसरा पद द्रुत कहा है। एला वर्ण के देवता कहे है अ+इ+ल्+आ अर्थात् आकार से विष्णु, इकार से कामदेव तथा लकार से लक्ष्मी को कहा है। एला पद के नाम सोलह कहे है– काम, गन्मथवत्, कान्त, जित, मत्त, विकार, मान्धाता, सुमति, शोभि, सुशोभि, गीतक, उचित, विचित्र, वासव, मृदु तथा सुचित्र। इसी प्रकार सोलह देवता भी कहे है– पद्मालया, पत्रिणी, रंजनी, सुमुखी, शची, वरेण्या, वायुवेगा, वेदिनी, मोहिनी, जया, गौरी, ब्राह्मी, मातंगी, चंडिका, विजया व चामुंडा। एला के अर्न्तगत दस प्राण भी कहे है जो– समान, मधुर, सान्द्र, कान्त, दीप्त, समाहित, अग्राम्य, सुकुमार, प्रसन्न व ओजस्वी। एला गण जो–

गण	मात्रा	देवता	फल
मगण	ऽऽऽ	पृथ्वी	श्री
यगण	।ऽऽ	जल	वृद्धि
रगण	ऽ।ऽ	अग्नि	निधन
सगण	।।ऽ	वायु	स्थानभ्रंश
तगण	ऽऽ।	आकाश	निर्धनता

(86) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–2/अध्याय–4/श्लोक–19–22
(87) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–2/अध्याय–4/श्लोक–23–181

जगण	।ऽ।	सूर्य	रोग
भगण	ऽ।।	चन्द्र	कीर्ति
नगण	।।।	इन्द्र	आयु

एला के चार भेद कहे है।

गणैला– गणैल वर्ण गण द्वारा उत्पन्न माना जाता है। जिसको तीन प्रकारों शुद्धा, संकीर्णा व विकृता में विभक्त किया गया है। शुद्वा के चार भेद कहे है– नादावती, हंसावती, नन्दावती, भद्रावती तथा इन्हीं समस्त भेदों को विस्तार से कहा गया है।

मात्रैला– गणों के द्वारा मात्रौल को निर्माण होता है। इसके चार भेद कहे है– रतिलेखा, मातलेखा, बाणलेखा, चन्द्रलेखा। प्रस्तुत प्रबन्ध के समस्त लक्षणों को विस्तार से कहा गया है।

वर्णैला– एला तथा मात्रा जैसे विभिन्न नियमों से जो बंधा न हो मात्र वर्णों की संख्या से बंधा हो, उसे वर्णैला कहा है।

देशैला– देश एला के पाँच भेद कहे है– कर्णाटैला, लाटैला, गौडैला, आन्धैला तथा द्राविडैला। इस प्रकार एला को वर्णित किया है।

करण– करण को स्पष्ट रूप से आठ भेदों में विभक्त किया गया है, जो कि–

स्वर करण– वह करण जिसके उद्ग्राह तथा ध्रुव स्वर में निबद्ध हो, पदों द्वारा आभोग भी निबद्ध किया गया हो व नायक तथा वाग्गेकार के नाम भी सम्मिलित हो। गान के आरम्भिक स्थान में इष्ट तथा अन्तिम स्वर स्थान पर अंश स्वर को प्रयोग हो, इन सभी लक्षणों से युक्त होने को स्वर करण कहा गया है।

पाट करण– वह करण जिसमें ध्रुव को हस्त पाटों के साथ प्रयोग किया जाए। पाट करण के दो भेद कहे गए है–क्रमपाट व व्यत्यासपाट।

बन्ध करण– वह करण जो मुरज के पाटों तथा स्वराके कि साथ प्रयुक्त हो उसे बन्ध करण कहा गया है।

पद करण– स्वरों के साथ पदों को निबद्ध किया जाए, वह पद करण कहलाता है।

विरूद करण– स्वरों के साथ विरूदों को प्रयोग किया जाए, वह विरूद पाट है।

तेन करण– तेनक के साथ स्वरों को प्रयोग हो, वह तेन करण कहा जाता है।

चित्र करण– कर पाटों के साथ स्वर व मुरज के पाटों को पद में बान्धा जाए वह चित्र करण है।

मिश्र करण– स्वर तथा तेनक से संयोजन से बना करण मिश्र करण कहलाता है।

इन सभी करणों को उद्ग्राह तथा ध्रुव के साथ गान करने का वर्णन पं० शारंगदेव जी द्वारा किया गया है।

ढेंकी प्रबन्ध– उद्ग्राह के पूर्वी भाग को दो तथा उत्तर भाग को एक बार प्रयोग किया जाता है जिसमें प्रयोग के रूप में मेलापक के होने व न होने में अर्न्तगत नहीं होता है। ढेंकी प्रबन्ध के चार भेद कहे गए है जो कि– मुक्तावली, वृत्तबन्धिनी, युग्मिनी तथा वृत्तमाला को कहा है। छन्द रहित मुक्तावली, एक वृत्त से युक्त वृत्तबन्धिनी, दो वृत्तों से युक्त युग्मिनी तथा कई वृत्तों से युक्त वृत्तमाला को वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य दस प्रकार और कहे गए है। प्रत्येक में तीन–तीन प्रकारों को कहा है।

वर्तनी प्रबन्ध– पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्तनी प्रबन्ध के लक्षणों को स्वर करण के समान ही कहा गया है। वर्तनी के अर्न्तगत रासक से अन्य ताल के प्रयोग को कहा गया है, जिसकी लय विलम्बित कही गयी है। वर्तनी के अर्न्तगत उद्ग्राह को प्रयोग दो बार तथा ध्रुव व आभोग को एक बार गाकर ध्रुव पर अन्त करने की बात कही गयी है। विवर्तनी वर्तनी का ही अन्य नाम माना जाता है। जब उसमें कंकाल, पतिताल, कुडुक्क तथा द्रुतमंठक ताल को प्रयोग किया जाता है।

झोम्बड प्रबन्ध– झोम्बड के अर्न्तगत आरम्भिक प्रबन्ध को दो तथा अन्य पद को एक बार प्रस्तुत किया जाए व ध्रुव का गान दो बार और एक बार आभोग को प्रसतुत किया जाए और अन्त में ध्रुव हो तो वह झोम्बड प्रबन्ध कहा जाता है। झोम्बड के अर्न्तगत दस तालों

को कहा गया है जो– स्सिारूक, कुडुक्क, त्रिपुट, प्रतिमंठक, द्वितीय, गारूगी, रास, यतिलग्न, अड्डतालिका तथा एकताली। झोम्बड के दो भेद भी कहे गए है– तारज और अतारज। इस प्रकार झोम्बड को वर्णित किया है।

लम्भ प्रबन्ध– एक या दो खण्डों से युक्त उद्ग्राह व ध्रुव का प्रस्तुतीकरण हो तथा जिसमें आभोग अनिवार्य न हो व गान का अन्त ध्रुव पर किया जाए वह लम्भ कहा जाता है। जब लम्भ के उद्ग्राह के अर्न्तगत ताल प्रयोग न हो तो वह आलाप लम्भ कहलाता है। इस प्रकार लम्भ के अर्न्तगत प्रलम्भ, भागलम्भ, लम्भपद, अनुलम्भ, उपलम्भ, विलम्भ, आदि के लक्षणों को विस्तार से कहा है।

रासक प्रबन्ध– वह प्रबन्ध जो झोम्बड के लक्षणों से युक्त हो वह रासक प्रबन्ध कहलाता है। रासक के तीन प्रकार गुणाजनों के द्वारा स्वीकारे गए है, जो कि गण, वर्ण तथा मात्रा कहे गए है। इन गण, वर्ण तथा मात्राओं के समस्त लक्षणों को पं० शारंगदेव जी द्वारा विस्तार के वर्णित किया गया है।

एकताली प्रबन्ध– एकताली प्रबन्ध के अर्न्तगत जब उद्ग्राह तथा ध्रुव का गान दो बार क्रमशः करते हुए, आभोग व ध्रुव को एक बार प्रस्तुत किया जाए, वह एकताली प्रबन्ध कहलाता है। गुणीजनों के मतानुसार आलाप द्वारा आरम्भ करना चाहिए।

आलि प्रबन्ध आलिप्रबन्ध को वर्णित करते हुए, विभिन्न प्रकारों को कहा गया है[(88)] जो इस प्रकार है–

वर्ण प्रबन्ध– वर्ण ताल व कर्णाट भाषा से युक्त होने पर स्तुति हो, उसे वर्ण प्रबन्ध कहा है।

वर्णस्वर प्रबन्ध– तेनक पर समाप्त होने वाला इच्छा के अनुसार रचित स्वर, पाट, पद व तेनक से युक्त प्रबन्ध वर्णस्वर प्रबन्ध कहा है।

गद्य प्रबन्ध– वह पद जो छन्दों से रहित हो वह गद्य प्रबन्ध कहा जाता है। गद्य प्रबन्ध के छः भेद उत्कलिका, चूर्ण, ललित, वृत्तंगन्धि, खंड तथा चित्र को विस्तार से कहा गया है।

---

(88) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड–2/अध्याय–4/श्लोक–181–264

कैवाड प्रबन्ध– पाट अक्षरों के साथ उद्ग्राह व ध्रुव में गान होता है व समापन भी उद्ग्राह पर हो वह कैवाड प्रबन्ध कहा गया है। सार्थक व निरर्थक को कैवाड प्रबन्ध के दो भेद कहा गया है।

अंकचारिणी प्रबन्ध– इच्छित ताल में आभोग में नायक के नाम से युक्त तथा वीर व रौद्र रस से परिपूर्ण स्तुति को अंकचारिणी प्रबन्ध कहा गया है। प्रस्तुत प्रबन्ध में वासवी, कलिका, वृत्ता, वीरवती, वेतोत्तरा व जातिमती को छः भेद के रूप में वर्णित किया गया है।

कन्द प्रबन्ध– कर्णाट जैसी देश भाषा वाले पाट व विरूद तथा ताल रहित वीर रस में प्रस्तुत होने वाले कन्द प्रबन्ध को वर्णित किया है तथा इसके उन्तीस भेदों को कहा गया है।

हयलीला प्रबन्ध– जो हयलीला ताल व हयलीला छन्द से युक्त होता है, वह हयलीला प्रबन्ध कहा जाता है। गद्यजा तथा पद्यजा दो इसके दो भेद के रूप में विस्तार से वर्णित किया गया है।

गजलीला प्रबन्ध– छन्द के अतिरिक्त समस्त लक्षण हयलीला के कहे है, यह गजलीला ताल से उत्पन्न होता है।

द्विपदी प्रबन्ध– प्रस्तुत प्रबन्ध के चार भेद कहे गए है–शुद्धा, खंड़ा, मात्रा तथा सम्पूर्णा व करूण ताल में द्विपदी प्रबन्ध का गान किया जाता है।

चक्रवाल प्रबन्ध– वह वर्ण समूह जो पूर्व–पूर्व हो तथा अन्त में आए और उत्तर–उत्तर वर्णों के समूह आरम्भ में हो उसे चक्रवाल प्रबन्ध कहा है।

क्रौंचपद प्रबन्ध– प्रतिपाल ताल के अर्न्तगत प्रस्तुत होने वाले पद व स्वर क्रौंच पद कहे जाते है।

स्वरार्थ प्रबन्ध– सरगम द्वारा स्वरों द्वारा अर्थ को व्यक्त करने व गान की समाप्ति ग्रह स्वर पर हो वह स्वरार्थ प्रबन्ध कहा जाता है।

ध्वनिकुट्टनी प्रबन्ध– भिन्न ताल के अर्न्तगत उद्ग्राह व ध्रुव को प्रस्तुत किया जाए व मठं व कंकाल को ताल रहित रखा जाए समान मात्रा यति स्थित हो वह ध्वनिकुट्टनी प्रबन्ध कहलाता है।

आर्या प्रबन्ध– आर्या छन्द वाला व सरगम युक्त उद्ग्राह को दो बार प्रस्तुत किया जाए, व ध्रुव को एक बार प्रस्तुत करें वाग्गेयकार का नाम आभोग में प्रस्तुत हो उसे आर्या प्रबन्ध कहा गया।

गाथा प्रबन्ध– प्राकृत भाषा में पाँच पदों का प्रस्तुतीकरण हो, उसे गाथा प्रबन्ध कहा जाता है।

द्विपथक प्रबन्ध– द्विपथ छन्द से युक्त व स्वरों पर समाप्त होने वाला हो ताल की अनिवार्यता न हो, उसे द्विपथक प्रबन्ध कहा है तथा चार भेदों का उल्लेख किया है– उद्ग्राह व ध्रुव युक्त, प्रयोग गमक युक्त, स्वर व प्रयोग सहित तथा स्वर व प्रयोग रहित।

कलहंस प्रबन्ध– कलहंस छन्द द्वारा स्वर आधारित पदों से उत्पन्न होने पर कलहंस प्रबन्ध होता है। कलहंस प्रबन्ध के दो भेद कहे है– वर्णिक तथा मात्रिक। पं० शारंगदेव जी द्वारा विस्तार से समस्त लक्षणों को कहा है।

तोटक प्रबन्ध– पदान्त स्वर विन्यास से युक्त व तोटक छन्द का आचरण करे वह तोटक प्रबन्ध है।

घट प्रबन्ध– जिसका अर्ध भाग तेनक व अर्ध भाग द्विपदी हो उसे घट प्रबन्ध कहा है।

वृत्त प्रबन्ध– इष्ट ताल में छन्द का गान करने से वृत्त प्रबन्ध कहा जाता है। कुछ विद्वानों द्वारा वृत्त प्रबन्ध को स्वर हीन कहा है।

मातृका प्रबन्ध– वर्ण माला में प्रयुक्त होने वाले सभी वर्णों को क्रमशः प्रस्तुतीकरण हो, तो वह मातृका प्रबन्ध कहा जाएगा। इसके समस्त भेद व लक्षण को विस्तार सहित पं० शारंगदेव जी द्वारा कहे गए है।

रागकदम्बक प्रबन्ध– प्रस्तुत प्रबन्ध के दो भेद कहे गए है– नन्द्यावर्त व स्वस्तिक। चार ताल व चार ही छन्दों वाले राग के समूह को नन्द्यावर्त कहा है तथा इसी का दोगुना स्वरूप स्वास्तिक कहा गया है तथा इसी के विभिन्न लक्षणों आदि को पं० शारंगदेव जी द्वारा विस्तार से कहा गया है।

पंचतालेश्वर प्रबन्ध– प्रस्तुत प्रबन्ध ताल रहित होता है अर्थात् आलाप होता है। तथा चच्चत्पुट ताल में ही स्वर व पाट प्रस्तुत होते है तथा पटह द्वारा जिन पाटों की निष्पत्ति होती है, उन्हें प्रयोग किया जाता है। प्राचीन तालों चच्चत्पुट, चाचपुट षटपितापुत्रक आदि के विभिन्न लय रूपों द्वारा निर्मित प्रबन्ध ही पंचतालेश्वर प्रबन्ध कहा गया है।

तालार्णव प्रबन्ध– कई तालों वाला तालार्णव प्रबन्ध कहा है, इसके दो भेद गद्य तथा पद्य कहे है।

इस प्रकार आलिस्थ प्रबन्ध चौबिस कहे गए है। इन्हीं में जब कुछ अंशों में सूड को आलिक्रम में मिश्रित होते है तब यह प्रबन्ध बत्तीस हो जाते है।

विप्रकीर्ण प्रबन्ध

इसी प्रकार विप्रकीर्ण प्रबन्ध वह है, जो सूड तथा आलिक्रम से जो भी शेष होते है,[89] जैसे–

श्रीरंग प्रबन्ध– आखिर में पद समन्वित व चार राग व चार तालों वाला श्रीरंग प्रबन्ध कहा है।

श्रीविलास प्रबन्ध– आखिर में स्वर व पाँच राग व पाँच तालों वाला श्रीविलास प्रबन्ध कहा है।

पंचभंगि प्रबन्ध– आखिर में तेनक व दो राग व दो तालों वाला पंचभंगि प्रबन्ध कहा है।

पंचानन प्रबन्ध– आखिर में पाट व दो राग व दो तालों वाला पंचानन प्रबन्ध कहा है।

---

(89) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–2/अध्याय–4/श्लोक–265–310

उमातिलक प्रबन्ध–अन्त में विरूद व तीन ताल व तीन राग हो वह उमातिलक प्रबन्ध कहा है।

त्रिपदी प्रबन्ध– आरम्भिक दो पद दो–दो गणों के तीसरा पद चार गण, व चौथा पद तीन गण का हो व सभी पद कुल ग्यारह गण हो वह त्रिपदी प्रबन्ध कहा है।

चतुष्पदी प्रबन्ध– सम पद सोलह व विषम पद पन्द्राह मात्रा के हो व चतुष्पदी प्रबन्ध है।

षट्पदी प्रबन्ध – जब तीसरे और छठें पद पर तीन गण व अन्य पर दो–दो गण हो वह षट्पदी प्रबन्ध कहलाता है।

वस्तु प्रबन्ध– जो प्रबन्ध पहले, तीसरे व पांचवें पद पन्द्रह मात्रा का हो, दूसरा और चौथा पद बारह मात्रा का हो आरम्भिक दो पदों के अन्त में स्वर व पाट तथा अन्य पद के समापन में स्वर के साथ तेनक हो, वह वस्तु प्रबन्ध कहा है।

विजय प्रबन्ध– विजय ताल के अर्न्तगत जय घोष व गान हो, जो तेनक, स्वर, पाट तथा पद से युक्त हो तो विजय प्रबन्ध कहा जाता है।

त्रिपथ प्रबन्ध– जिसमे तीनो पद पाट, स्वर व विरूद से परिपूर्ण हो।

चतुर्मुख प्रबन्ध– जब पहले पद के स्थायी स्वर, दूसरे पद को आरोह वर्ण के पाट द्वारा तीसरे पद को अवरोह के वर्ण में पदों से, तथा चतुर्थ पद के संचारी वर्ण को तेनक में प्रस्तुत किया जाए व समापन उद्ग्राह पर हो उसे चतुर्मुख प्रबन्ध कहा है।

सिंहलीला प्रबन्ध– जब तेनक, स्वर, पाठ व विरूद को सिंहलीला ताल में निबद्ध किया जाए।

हंसलीला प्रबन्ध– जब एक पद को हसंलीला ताल द्वारा तथा दूसरे पद को पाट से युक्त किया जाए।

दंडक प्रबन्ध– स्वर व पद जब दंडक छन्द में निबद्ध हो।

झम्पट प्रबन्ध– झम्पट छन्द को क्रीडा ताल में प्रस्तुत किया जाए।

कुन्दक प्रबन्ध– जिसे विरूद, पाट व पद से गाया जाए।

त्रिभंगि प्रबन्ध– पद, पाट व स्वरों से युक्त प्रबन्ध त्रिभंगि प्रबन्ध कहा है जिसके पाँच भेद कहे गए है–प्रथम त्रिभंगि ताल, द्वितीय त्रिभंगि वृत्त, तीना ताल या राग, तीन वृत्त, त्रिदेव स्तुति।

स्वरांक प्रबन्ध– पद, एकताल के उद्ग्राह मेलापक में स्वर दो ताल को व विरूदों से युक्त तीन ताल के ध्रुव उत्पन्न होता है।

श्रीवर्धन प्रबन्ध– विरूद, पाट, पद व स्वरों के योग द्वारा श्रीवर्धन प्रबन्ध कहा है।

हरविलास प्रबन्ध– विरूद पद, पाट तथा तेनक द्वारा हरविलास प्रबन्ध कहा गया है।

सुदर्शन प्रबन्ध– पद, विरूदों, तथा तेनकों के योग द्वारा सुदर्शन प्रबन्ध निर्मित होता है।

हर्षवर्धन प्रबन्ध– स्वरों व पाटों को संयोग द्वारा हर्षवर्धन नामक प्रबन्ध का निर्माण होता है।

वदन प्रबन्ध– प्रस्तुत प्रबन्ध के अर्न्तगत एक दगण, दो पगण तथा दो छगण को कहा है। इसे ही वदन प्रबन्ध कहा है।

चच्चरी प्रबन्ध– बसन्त के उत्सव में गायी जाने वाली, हिन्दोल राग की व चच्चरी ताल में निबद्ध सोलह मात्राओं के पद की रचना को चच्चरी प्रबन्ध कहा गया है।

चर्या प्रबन्ध– पद्धडी छन्द की रचना जो अनुप्रास तथा सम्बन्धी विषय में दिखे, उसे चर्या प्रबन्ध कहा गया है। इसे चर्या के पदों व ध्रुव के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

पद्धडी प्रबन्ध– स्वरों तथा पटों पर अन्त होने वाली पद्धडी छन्द की रचना जिसमें पदान्त सम के भाव से युक्त हो, उसे पद्धडी प्रबन्ध कहा गया है।

राहडी प्रबन्ध– वीर रस की वह रचना जो युद्ध आदि के लिए रचि गयी रचना की स्तुति को राहडी प्रबन्ध कहा गया है।

वीरश्री प्रबन्ध– पदों तथा विरूदों से युक्त रचना को वीरश्री प्रबन्ध कहा है।

मंगलाचार प्रबन्ध– निःसारू ताल में निबद्ध कैशिक राग के अर्न्तगत रचित गद्य तथा पद्य की रचना को मंगलाचार प्रबन्ध कहा जाता है।

धवल प्रबन्ध– प्रस्तुत प्रबन्ध को तीन भेदों को कहा है–कीर्ति, विजय व विक्रम। कीर्ति चार पदों से युक्त, विजय छः पदों के सहित, व विक्रम को आठ पदों वाला कहा गया है।

मंगल प्रबन्ध– मंगल पदों को कैशिकी या बोट्ट राग के अर्न्तगत विलम्बित लय में प्रस्तुत किया जाए वह मंगल प्रबन्ध कहा जाता है।

ओवी प्रबन्ध– ओवी पद को आखिर में रखते हुए, देश भाषा में तीन खण्डों को अनुप्रास से युक्त कर प्रस्तुत किया जाए, वह ओवी प्रबन्ध कहलाता है।

लोली प्रबन्ध– जब लोली पद को अन्त में रखते हुए, प्रकृत भाषा वाले पदों के साथ अनुप्रास से युक्त तीन खण्डों का प्रस्तुतीकरण हो, उसे लोली प्रबन्ध कहा गया है।

ढोल्लरी प्रबन्ध– लाट भाषा द्वारा दोहढ प्रबन्ध के युक्त होने पर ढोल्लरी पद को अन्त में रखा जाए, तब ढोल्लरी प्रबन्ध को निर्माण होता है।

दन्ती प्रबन्ध– वह प्रबन्ध जो दन्ती पदों से युक्त हो, अनुप्रास की प्रधानता हो व तीनों खण्डों को प्रयोग किया जाए, वह दन्ती प्रबन्ध कहलाता है।

सालगसूड प्रबन्ध– सालगसुड प्रबन्ध के दो भेद शुद्ध तथा छायालग कहे गए है। जिसमें एला तथा अन्य को शुद्ध सालगसुड के अर्न्तगत स्थान दिया गया है, तथा जाति से अन्तरभाषा के मध्य के समस्त प्रकरणों को भी शुद्ध ही कहा गया है। सालग सूड के सात भेद इस प्रकार कहे गए है।[(90)]

ध्रुव प्रबन्ध– प्रस्तुत प्रबन्ध के अर्न्तगत उद्ग्राह एक धातु से युक्त हो तथा दो खण्ड हो, अन्य खण्ड ऊँचे स्वर के हो व तीनों का गायन दो बार हो, तत्पश्चात् दो खण्डों से युक्त आभोग के प्रथम खण्ड दो व दूसरा खण्ड में स्वर कुछ ऊँचें हो वह आभोग के नायक का

---

(90)चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–2/अध्याय–4/श्लोक–311–361

नाम हो तथा उद्ग्राह पर गासन को समापन हाक वह ध्रुव है। इसके पश्चात् पं० शारंगदेव जी द्वारा ध्रुव प्रबन्ध के अन्य लक्षणों आदि को सविस्तार कहा है।

मंठ प्रबन्ध– जिसमें उद्ग्राह को दो या एक यति का प्रयोग किया जाए व ध्रुव को दो बार प्रस्तुत किया जाए, अन्तर खण्ड का प्रस्तुतीकरण अनिवार्य न हो व ध्रुव के बाद आभोग किया जाए व ध्रुव पर ही समापन हो उसे मंठ प्रबन्ध कहा है। मंठ प्रबन्ध के अर्न्तगत जयप्रिय, मंगल, सुन्दर, वल्लभ, कलाप तथा कमल यह छः प्रकारों का वर्णन किया गया है।

प्रतिमंठ प्रबन्ध– प्रतिमंठ प्रबन्ध के लक्षण पूर्ण रूप से मंठ प्रबन्ध के समान ही कहा है। इसका प्रयोग प्रतिमंठ ताल में होता है। प्रतिमंठ प्रबन्ध के चार भेद कहे गए है– अमर, तार, विचार, तथा कुन्द। साथ ही इन चारों के लक्षणों को विस्तार से कहा है। समस्त लक्षणों का प्रस्तुतीकरण श्रृंगार रस में किया जाता है।

निःसारूक प्रबन्ध– निःसारूक ताल से युक्त निःसारूक प्रबन्ध को कहा गया है। पं० शारंगदेव जी द्वारा प्रबन्धाध्याय के अर्न्तगत छः भेद कहे है– वैकुन्द, आनन्द, कान्तार, समर, वांछित व विशाल। इन समस्त भेदों के सभी लक्षणों को विस्तार से कहा गया है।

अड्डताल प्रबन्ध– अड्डताल प्रबन्ध का गान अड्डताल नामक ताल में प्रस्तुतीकरण किया जाता है। इसके छः भेद कहे है– निःशक, शंक, शोल, चार, मकरन्दक तथा विजय।

रासक प्रबन्ध– पं० शारंगदेव जी द्वारा रासक प्रबन्ध को रास ताल से युक्त माना है तथा चार भेद भी कहे है जो– **विनोद**– आलापान्त ध्रुवपद द्वारा उत्पत्ति कही है। जिसे कुतुहल की उत्पत्ति में प्रयोग किया जाता है, **वरद–** वह ध्रुव जिसमें मध्य में आलाप का प्रयोग हो उसे वरद कहा गया है, **नन्द–** आलाप द्वारा निर्मित होने वाले दो खंडों से युक्त उद्ग्राह आदि में प्रयोग होने वाले प्रबन्ध रूप को नन्द कहा है, **कम्बुज–** जिसमें करूण रस की प्रधानता हो वह कम्बुज कहा गया है। इस प्रकार दो खण्डों से युक्त उद्ग्राह की रचना होती है।

एकताली प्रबन्ध– प्रस्तुत प्रबन्ध एकताली ताल से परिपूर्ण कहा गया है। एकताली के तीन भेद कहे है– **रमा–** रमा एकताली वह है जिस यति के साथ उद्ग्राह में एक बार प्रस्तुत

किया जाए, **चन्द्रिका**– उद्ग्राह को दो बार परन्तु इसमें द्रुत लय यति व अनुप्रास अंलकार द्वारा अलंकृत होता है, तथा **विपुला**– उद्ग्राह से पहले प्रस्तुत होने वाले आनन्द से युक्त आलाप को एकताली प्रबन्ध कहा गया है।

रूपक प्रबन्ध– उस रूपक को श्रेष्ठ माना गया है जो किसी भी दोष से मुक्त हो तथा गुणों से युक्त हो इसे नवीन रूपक माना जाता है। जिसमें विशेष रूप से राग, मातु, धातु, ताल, लय सभी समन्वित होते है। राग के अंगों द्वारा धातु व रस तथा अलंकार के द्वारा मातु निर्मित होते है। लयों के द्वारा ताल में नवीनता उत्पन्न होती है अर्थात् किसी भी रचना को नवीन उसके अंगों के द्वारा बनती है।

पं० शारंगदेव जी द्वारा तीन रूपक मुख्य माने गए है तथा अधम रूपकों की संख्या दो कहे है। मुख्य रूपक– परिवृत्त, पदान्तर तथा भंजनीसंश्रित कहे है व अन्य दो खल्लोत्तार तथा अनुसार।[(91)]

3.5.4.4 गीत के गुण–दोष

पं० शारंगदेव जी द्वारा गीत के दस गुणों को कहा है जिनमें **व्यक्त**– स्वरों को स्पष्ट रूप में व्यक्त करना, **पूर्ण**– समस्त नियमों अर्थात छन्द, राग गुण, स्वरों से युक्त, पद, गमक इत्यादि से परिपूर्ण, **प्रसन्न**– प्रसन्न रूप में भावों को प्रकट करने में सक्षम, **सुकुमार**– कण्ठ की शुद्धता, **अलंकृत**– समस्त स्थानों को स्पष्ट वर्णन, **सम**– लय वर्ण आदि के सहित, **सुरक्त**– वल्लकी व कण्ठ से परिपूर्ण, **श्लक्ष्ण**– तीनों स्थानों व तीनों लयों में सक्षम, **विकृष्ट– उच्च स्वरों के गायन में सक्षम** व **मधुर–** रंजकता तथा लावण्य से परिपूर्ण।

इसी प्रकार गीत के दस दोष कहे गए है। जिसमें लोक, शास्त्र, श्रुति विरोध, काल विरोध, पुनरूक्त, कला बाह्य, गतक्रम आदि को दोष के रूप में पं० शारंगदेव जी द्वारा वर्णित किया गया है।[(92)] इस प्रकार पं० शारंगदेव जी द्वारा संगीत रत्नाकर के चौथें अध्याय प्रबन्धाध्याय को कहा गया है, जिसमें प्रबन्ध के प्रत्येक प्रकार को विस्तार से लक्षणों के साथ कहा गया है।

---

(91) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–2/अध्याय–4/श्लोक–361–373
(92) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–2/अध्याय–4/श्लोक–372–380

3.5.5 तालाध्याय

संगीत रत्नाकर का पंचम अध्याय तालाध्याय है, जिसके अर्न्तगत पं० शारंगदेव जी द्वारा ताल का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस अध्याय में पं० शारंगदेव जी द्वारा दो ताल पद्धितियों का सम्पूर्ण विवेचन किया गया है, जो मार्गी ताल व देशी ताल है। इस अध्याय के आरम्भ में भी पं० शारंगदेव जी ने समस्त अध्यायों की तरह मंगलाचरण के अर्न्तगत देव स्तुति करते हुए, ताल का देवता ''शिव'' को माना गया है व शिव की ही स्तुति करते हुए ताल के पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख किया है। शिव की स्तुति करते हुए शिव जो यति अर्थात् मोक्ष की इच्छा रखने वाले बुद्धिमान पुरूष जो यम, नियम, योग का अभ्यास करते है तथा अलग–अलग नियमों द्वारा सांख्य योग आदि भिन्न–भिन्न मार्गो से और कलाओं से पूर्ण शिव लीन हो जाते है। उस ध्रुव, चित्र, वार्तिक तथा दक्षिण मूर्ति शिव जो अदृभुत् है, यह संसार शिव द्वारा स्थिर है। उस शिव को मैं नमस्कार करता हुँ।

इसके पश्चात् ताल की उत्पत्ति का वर्णन किया है, कि तल धातु में धञ् प्रत्यय लगाने से ताल शब्द की उत्पत्ति होती है। ताल के अर्थ का वर्णन करते हुए कहा है कि ताल संगीत को प्रतिष्ठता प्रदान करता है, अर्थात् जो संगीत की तीनों विधाओं गीत, वाद्य व नृत्य को प्रतिष्ठा देता है व अपने ऊपर धारण करता है, ताल कहलाता है। ताल शब्द की उत्पत्ति करने के बाद ताल के स्वरूप का वर्णन करते हुए ताल कालः तालः अर्थात् काल समय ही ताल है, परन्तु यह समय लघु, गुरू इकाईयों से मापी जाती हो, उसे ताल माना चाहिए। वह काल अर्थात् ताल जो गीत, वाद्य नृत्य को ग्रहण करता है, वह ताल कहा जाता है। विद्वानों ने ताल के दो प्रकार कहे है। मार्गी और देशी ताल विद्वानों ने मार्गी ताल के विशय में कहा है, जो ताल नाट्यशास्त्र में वर्णित है।

3.5.5.1 मार्गी ताल–जिन तालों का प्रयोग मार्गी संगीत के साथ किया जाता था, उसे मार्गी ताल की संज्ञा दी गयी थी। इन तालों में शास्त्रीयता के नियम बहुत कठोर थे। दूसरे देशी ताल इनका प्रयोग देशी संगीत के साथ किया जाता था और इनके शास्त्रीय नियम ज्यादा कठोर नहीं थे। उसी तरह से क्रियाओं के भी दो भेंद कहें है, निशब्द क्रिया और सशब्द क्रिया तथा दोनों क्रियाओं के चार–चार भेंद कहे है। **निशब्द क्रिया–** निशब्द क्रिया वह क्रिया है, जिस क्रिया में कोई ध्वनि न सुनाई दे और **सशब्द क्रिया–** में ध्वनि हमें कानों

द्वारा स्पष्ट सुनाई देती है, इन क्रियाओं के पं० शारंगदेव जी द्वारा चार–चार प्रकार कहे है। निशब्द के प्रकार– आवाप, निष्क्राम, विक्षेप तथा प्रवेशिका और सशब्द क्रिया में ध्रुव, शम्या, ताल तथा सन्निपात। इस तरह प्रथम श्लोक में मार्ग शब्द का वर्णन किया गया है, वह भी ताल का एक अंग है। जिसका ग्रन्थकार ने वर्णन किया है कि मार्ग चार प्रकार के है– ध्रुव मार्ग, चित्र मार्ग, वार्तिक मार्ग, दक्षिण मार्ग। इन चारों मार्गों में केवल ध्रुव मार्ग की कला एक मात्रा है। बचें हुए सभी मार्गों की कला क्रम से दो, चार तथा आठ मात्रा की होती है। मात्रा के वर्णन में मात्राओं के आठ प्रकार का कहे है, जो 1. ध्रुवका 2. सर्पिणी 3. कृष्णा 4. पम्दिनी 5. विसर्जिता 6. विक्षिप्ता 7. पताका 8. पतिका।[(93)] मात्रा के लिए पं० शारंगदेव जी ने मार्ग कला शब्द का प्रयोग किया है।

पं० शारंगदेव जी ने इन मात्राओं को मार्ग ताल का अंग कहते हुए, चित्र आदि मार्गों में इनके उपयोग से सम्बंधित अनुदेश किया है। इन मात्राओं के लक्षणों में पं० शारंगदेव जी ने इन मात्राओं की हाथ की क्रिया का वर्णन किया है। **1. ध्रुवका–** जिसमें ध्रुव मात्रा को सशब्द क्रिया कहा है, 2. **सर्पिणी–** बांयी ओर जाने वाली क्रिया है, **3. कृष्ण–** दांयनी ओर जाने वाली, **4. पम्दिनी–** नीचे की ओर, **5. विसर्जिता–** जो बाहर की ओर जाए, **6. विक्षिप्ता–** सिकुडने वाली, **7. पताका–** ऊपर उठने वाला **8. पतिता–** नीचे गिरने वाला। इन सभी क्रियाओं का प्रयोग सशब्द क्रिया में ही होता है अर्थात् यहाँ मात्रा का माप तय अर्थात् पूर्व निश्चित नहीं होता है। केवल सशब्द क्रियाओं में हाथ की स्थिति है।[(94)] तत्पश्चात् इन मात्राओं का प्रयोग मार्गों के साथ बताया गया है, कि चित्र मार्ग में ध्रुवका तथा पतिता का उपयोग कहा है। वार्तिक मार्ग में ध्रुवका तथा सर्पिणी का प्रयोग होता है। पताका और पतिता मात्रा का प्रयोग भी वार्तिक में होता है। दक्षिण मार्ग में आठों मात्राओं का प्रयोग बताया है। इसके बाद पं० शारंगदेव जी द्वारा मार्गी तालों के दो भेदों का वर्णित किया है–**1. चतुरस्त्र, 2.त्र्यस्त्र**।

क्रम से इन दो भेदों का को ताल कहा है, जो चच्चत्पुट और चाचपुट कहा है और इन दोनों तालों के तीन–तीन भेद बताए है, जो क्रमशः यथाक्षर, द्विकल तथा चतुष्कल कहे है।

---

(93) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–3/अध्याय–5/श्लोक–12
(94) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–3/अध्याय–5/श्लोक–13–15

इसके अलावा मार्ग तालों की संख्या पाँच कही है– **1.** चच्चत्पुट **2.** चाचपुट **3.** षट्पितापुत्रक **4.** उद्घट्ट और **5.** सम्पकेष्टाक। इसमें चच्चपुट चतुरस्त्र है, अन्य शेष त्र्यस्त्र है। लघु, गुरू के अनुसार इन तालों का जो स्वरूप होता है। वही यथाक्षर स्वरूप कहा जाता है। यथाक्षर का दूसरा नाम एकल भी कहा है। द्विकल रूप में यह दो–दो कलाएं होती है और चतुष्कल में हर भाग में चार–चार कलाएं कही है। यव कला का अर्थ गुरू अक्षर से है।

यथाक्षर रूप में चच्चत्पुट स्वरूप **S S| S** और चाचपुट का यथाक्षर स्वरूप **S|| S** कहा है। इन तालों में द्विकल या चतुष्कल रूप समय यथाक्षर की सभी मात्राएं गुरू के बदल जाती है। इस तरह से चच्चत्पुट का द्विकल स्वरूप ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ और चाचपुट का द्विकल रूप ऽऽ ऽऽ ऽऽ हो जाएगा। इसी तरह से इसके चतुष्कल स्वरूप में चच्चत्पुट ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ और चाचपुट ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ बन जाएगा। द्विकल में ताल के पाद भाग को दो–दो कलाओं के होते है और चतुष्कल में चार–चार कलाओं के, यहाँ कला का अर्थ गुरू से है, जो ताल मद्रक आदि गीतकों में दिया जाता है। उनमें चार परदभागों से एक मात्रा मानी जाती है। इस जगह में मात्रा का अर्थ गीतक विशेष अंग या भाग से है, जिनकी लम्बाई पं० शारंगदेव जी द्वारा चार पादभागों के बराबर कही गयी है।**(95)** इसी तरह से अन्य मार्गी तालों का भी यथाक्षर, द्विकल तथा चतुष्कल रूप क्रिया है। शेष सभी तालों को त्र्यस्त्र का भेद माना जाता है। षटपितापुत्रक त्र्यस्त्र का भेद बताते हुए कहा है, कि इसके तीन प्रकार है अर्थात् इसके भी चच्चत्पुट और चाचपुट की भांति तीन भेद है।

षटपितापुत्रक का यथाक्षर रूप–

ऽ^{I}	।	ऽ	ऽ	।	ऽ^{I}
षट	**पि**	**ता**	**पुत्**	**र**	**कः**

इस यथाक्षर रूप की विशेषता यह है, कि इसके आदि तथा अंत में प्लुत होता है, इसके द्विकल रूप में बारह कलाएँ होती है। ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ, चतुष्कल में चौबिस कलाएँ

(95) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–3/अध्याय–5/श्लोक–16–21

(गुरू) ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ । इस ताल के दो और नाम पं० शारंगदेव जी द्वारा कहे गए है– **1.** उतर **2.** पंचपाणि, किन्तु इन नामों में इसके यथाक्षर रूप नहीं कहे मात्र अन्य संज्ञाएँ ही दी गयी है। इसके पश्चात् उद्घट्ट ताल के रूप का वर्णन करते हुए, इस ताल को भी त्र्यस्त्र का भेद कहा है।

उद्घट्ट ताल का यथाक्षर रूप–

उद	**घट्**	**ट**
ऽ	ऽ	ऽ

द्विकल में दो–दो कलाएं होने से ऽऽ ऽऽ ऽऽ और चतुष्कल में चार–चार ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ होती है। इसी प्रकार उद्घट्ट के भी तीन भेद कहे है। पाँचवां मार्गी ताल सम्पक्वेष्टक बताते हुए, उसे षटपितापुत्रक का भेद माना है, क्योंकि इसके यथाक्षर में षटपितापुत्रक की तरह ही अन्त में प्लुत कला होती है।

सम्पक्वेष्टक का यथाक्षर रूप–

ऽ^{I}	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ^{I}
सम	**पक**	**वेष**	**ट**	**क**

इस तरह से सम्पक्वेष्टक के यथाक्षर रूप को कहा है, इसी का द्विकल स्वरूप की सभी मात्राएँ गुरू में परिवर्तित होने से ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ होगा। इस प्रकार चतुष्कल में ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ होगा। तालों के यथाक्षर स्वरूप कहने के पश्चात् तालों की पात कला (कलाविधि) सशब्द और निशब्द क्रिया का वर्णन किया है। पं० शारंगदेव जी द्वारा मार्ग तालों की सशब्द व निशब्द क्रियाओं के नियम की समीक्षा करने से पूर्व उसका अभिप्राय बताया है कि सशब्द तथा निशब्द क्रियाओं के आठ प्रकार है। उनके पहले अक्षर के द्वारा उनका संकेत प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत संकेताक्षर इस प्रकार कहे है–

शम्या– श

ताल– ता

सन्निपात– सं

आवाप– आ

निष्क्राम– नि

विक्षेप– वि

प्रवेश– प्र

ध्रुव (सशब्द) क्रिया का प्रयोग माग तालों में नहीं बताया है। सबसे पहले चच्चत्पुट ताल का यथाक्षर रूप की क्रिया विधि बतायी है।

मात्रा	ऽ	ऽ	।	ऽ$^{।}$
यथाक्षर	चच	चत	पु	ट
क्रिया	सं	श	ता	श

समान्यतः सं, श, ता, श इस तरह से ही ताल की क्रियाऐं है, परन्तु कुछ विशिष्ट स्थानों पर आसारित आदि गीतकों आदि के साथ इसकी क्रिया श, ता, श, ता और पापिका गीतकों के प्रकार के साथ ता, श, ता, श। इस तरह से क्रियाओं का प्रयोग होता था। इसी प्रकार चाचपुट की भी क्रियाऐं होती है। इस ताल की यथाक्षर स्वरूप की क्रियाऐं होती है। इस ताल यथाक्षर स्वरूप की क्रियाऐं इस तरह से है।

ऽ । । ऽ	ऽ । । ऽ	ऽ । । ऽ
चा च पु ट	**चा च पु ट**	**चा च पु ट**
सं श ता श	**श ता श ता**	**ता श ता श**

उसी तरह से चाचपुट और चच्चत्पुट का द्विकल रूप की क्रिया विधि, इस प्रकार कही है, **चच्चपुट इस प्रकार कहा है–**

ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ
नि श	**नि त**	**श प्र**	**नि सं**

चाचपुट का द्विकलस्प में क्रियाऐं

ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ
नि श	**ता श**	**नि सं**

या

ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ
नि श	ता श	नि सं

उसी प्रकार दोनों को चतुष्कल स्वरूप भी वर्णित किया गया है– **चच्चत्पुट ताल की चतुष्कल कलाविधि–**

आ नि वि श	आ नि वि ता	आ श वि प्र	आ नि वि सं
ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ

चाचपुट का चतुष्कल कलाविधि–

आ नि वि श	आ ता वि श	आ नि वि सं
ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ

इस प्रकार से अन्य मार्गी तालों की कलाविधि का वर्णन पं० शारंगदेव जी द्वारा किया है। जिसमें षटपितापुत्रक की कलाविधि में प्रथम संन्निपात उसके पश्चात् ताल तथा बाद में शम्या, ताल, शम्या, ताल इस तरह क्रिया बतायी है।

षट्पितापुत्रक ताल की कलाविधि–

षट	पि	ता	पुत	र	क
ऽ'	।	ऽ	ऽ	।	ऽ'
सं	ता	श	ता	श	ता

इसी तरह इस ताल की द्विकल कलाविधि

षट	पि	ता	पुत	र	क
ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ
नि प्र	ता श	नि ता	नि श	ता प्र	नि सं

चतुष्कल कलाविधि–

षट	**पि**	**ता**	**पुत**	**र**	**क**
ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
आ नि वि प्र	**आ ता नि श**	**आ नि वि ता**	**आ नि वि श**	**आ ता वि प्र**	**आ नि वि सं**

इसके बाद पं० शारंगदेव जी द्वारा इन तालों में अंगुली नियम बताए है, जिसमें कहा है कि चच्चत्पुट के पहले पादभाग में कला कनिष्ठा अंगुली से होगी। उसके बाद दूसरे पादभाग में कनिष्ठा और अनामिका दोनों अंगुलियों से कला की जाती है। तीसरे पादभाग की कला कनिष्ठा, अनामिका तथा मध्यमा से होती है, और चौथें पादभाग की कला चारों अंगुलियों से की जाती है।[(96)]

चाचपुट की कला पहले पादभाग में कनिष्ठा, दूसरे पादभाग में कनिष्ठा तथा अनामिका से तीसरे पादभाग में चारों अंगुलियों से कला की जाती है। षटपितापुत्रक के छः पादभाग कहे है। पहले के चार पादभागों में कला चच्चत्पुट के समान ही कही है, शेष दो पादभागों में कनिष्ठा तथा तर्जनी द्वारा कला होती है।[(97)] इसके पश्चात् निशब्द क्रियाओं का प्रयोग बताते हुए कहा है, कि जिस हाथ की अंगुली के सशब्द क्रिया की जानी हो, उसी हाथ में निःशब्द क्रियाऐं होनी चाहिए, जिस पादभाग की क्रिया सशब्द हो उसी पादभाग में अंगुलियों से क्रिया नहीं की जाती है। सिंहभूपाल जी ने वर्णन किया है, कि अंगुली नियम केवल निःशब्द क्रियाओं में होते है, क्योंकि सशब्द क्रिया की कला पूरे हाथ से की जाती है। उद्घट्ट ताल का वर्णन करते हुए कहा है, कि मार्ग तालों में केवल उद्घट्ट ताल के ही एकल रूप में निशब्द क्रिया (निष्क्राम) का प्रयोग होता है। इसका स्थान नितांत अप्रधान है। इस ताल को चाचपुट ताल से उत्पन्न माना जाता है।

उद्घट्ट ताल की एककल(यथाक्षर) कलाविधि

उद्	**घट्**	**ट**
ऽ	ऽ	ऽ
नि	**श**	**श**

(96) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–3/अध्याय–5/श्लोक–22–33
(97) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–3/अध्याय–5/श्लोक–34–35

उद्घट्ट ताल की द्विकल कलाविधि

उद्	घट्	ट
ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ
वि श	ता श	नि सं

उद्घट्ट ताल की चतुष्कल कलाविधि

उद्	घट्	ट
ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
आ नि वि श	आ ता वि श	आ नि वि सं

इस प्रकार सम्पक्वेष्टक ताल को षटपितापुत्रक (पंचपाणि) ताल से उत्पन्न कहा गया है। इसके यथाक्षर स्वरूप में पांच पादभाग होते है।

ऽ^{I}	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ^{I}
ता	श	ता	श	ता

इसकी द्विकल और चतुष्कल रूप की कलाविधि षट्पितापुत्रक के समान कही गयी है।–

षट	पि	ता	पुत	र	क
ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ
नि प्र	ता श	नि ता	नि श	ता प्र	नि सं

इसके बाद पं० शारंगदेव ने कास्यंताल पर प्रयोग करने की बात को कहा है कि गान्धर्व मार्ग का अच्छा ज्ञान रखने वाला, एक कुशल कास्यंताल (घनवाद्य) धारण करने वाला व्यक्ति हो, जो गायक की सहायता करें व उसकी गलतियों को सम्भाल सके तथा ताल की क्रियाओं को दर्शाता रहें, वह एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए, जो गान्धर्व में जिस–जिस मार्ग का प्रयोग होता है, उसमें कुशल हो। तालों के संर्कीण भेद करते हुए, पं० शारंगदेव जी द्वारा यह संकेत दिया गया है, कि मार्ग तालों द्वारा ही देशी तालों की उत्पत्ति हुयी है या फिर मार्ग तालों के खण्ड़ भेद है, उनसें देशी तालों की उत्पत्ति माननी चाहिए, तथा इसी

से आज के तालों की भी उत्पत्ति हुयी है, यही प्रस्तार कहा जाता है, जैसे गुरू के खण्ड़ करें तो क्रम ऽ = । । = । 0 0

इसके पश्चात् ताल परिवर्तन को कहा गया है।

आवृतिः पादभागादेः परिर्वतनमिष्यते।।[98]

अर्थात्– पादभाग मात्रा आदि को बार–बार दोहराना परिर्वतन कहलाता है। सिंहभूपाल जी ने ताल के समापन के बाद पुनः प्रारम्भ करने को आवृति कहा है। वर्तमान संगीत के अर्न्तगत पूरी बंदिश में ताल की आवृति ही की जाती है। परिवर्तन के पश्चात् लय को वर्णित करते हुए कहा है, कि काल का माप करने के लिए क्रिया अनिवार्य है तथा क्रिया के साथ विश्रान्ति जुड़ी है अर्थात् जो विश्रान्ति क्रिया के विस्तार के बिलकुल साथ जुडी हो उसे लय कहा है।

इसके साथ ही लय के तीन प्रकार कहे है– **1.** द्रुत, **2.** मध्य और **3.** विलम्बित। इन में सबसे जल्दी चलने वाली द्रुत लय है, क्योंकि उसमें क्रियाओं के मध्य विश्रान्ति सबसे कम होती है। द्रुतलय से दुगुनी विश्रान्ति मध्यलय और मध्यलय से दुगुनी विश्रान्ति विलम्बित लय कही गयी है। तत्पश्चात् पं० शारंगदेव जी द्वारा लय के भेदों से लय भाव संबंध का मार्गों के भेदों से चिर क्षिप्र तथा मध्य भावों के द्वारा लय को जोडा है। पं० शारंगदेव जी के कथनानुसार हर मार्ग की तीन–तीन लयों को किया जा सकता है। उनमें विलम्बित, चिर, मध्य मथा द्रुत (क्षिप्र) इन तीनों मार्गों में इस प्रकार से लय आधा–आधा कर प्रत्येक मार्ग में होने वाली लय तीन–तीन लयों में सर्वप्रथम धीमी लय जो विलम्बित कह जाती है। शेष दो लयों को उनके आधार पर मध्य व द्रुत का सम्बन्ध दिखाता है। उदाहरण हेतु भेदों में 10, 10, 5, 25 अक्षरकाल वाली लय दक्षिण मार्ग में द्रुत लय वार्तिक में मध्य लय तथा विलम्बित लय को चित्र मार्ग की मानी है। इससे यह प्रतीत होता है, कि पं० शारंगदेव जी द्वारा चिर क्षिप्र मध्यभव कहा है। इसके बाद पं० शारंगदेव जी द्वारा लय का सम्बन्ध यति से करते हुए वर्णन किया है कि–

---

(98) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–3/अध्याय–5/श्लोक–43

लयप्रवृत्तिनियमों य तिरियभिधीपते।

अर्थात्– लय का कितने प्रकार से प्रयोग होता है, उसके नियम को यति कहा है। अतः इन तीन लय प्रकारों का और किन–किन क्रमों में प्रयोग होता है उसे यति कहते है। इन यतियों के तीन प्रकार कहे है– समा, स्तोत्रागता, गोपुच्छा।

ग्रह शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए, संगीत रत्नाकर के दोनों टीकाकारों ने सिंहभूपाल व कल्लिनाथ ने वर्णन किया है, कि ग्रह शब्द का अर्थ है– ग्रहण करना या पकडना। ग्रहण ताल में ग्रह का सम्बन्ध गीत, वाद्य तथा नृत्त के साथ ताल की उठान किस स्थान से होती है, उसका सूचक है। इसमें ग्रन्थ का उल्लेख है, कि ताल की उठान दो प्रकार से होती है।

गीत या वाद्य वादन के साथ या उसके पहले या बाद में इसमें ग्रह के दो प्रकार कहे है। समग्रह जब एक साथ उठान आरम्भ हो, विषम ग्रह जब आगे पीछे से आरम्भ हो, इसके अर्थ को पं० शारंगदेव जी द्वारा प्रबन्ध अध्याय के एला प्रबन्ध में विषम ग्रह का वर्णन किया है। विषम ग्रह के अर्न्तगत पं० शारंगदेव जी ने ताल आरम्भ होने से बाद में दो तरह से उठान करने के नियम कहे है तथा विषम ग्रह के दो प्रकार अतीत और अनागत कहे है। इस प्रकार से ग्रह के तीन भेद सम, अतीत और अनागत कहे है। पं० शारंगदेव जी द्वारा भरत तथा दत्तिल के समान ग्रह के लिए पाणि शब्द का प्रयोग किया तथा पाणि के तीन भेद कहे है– समपाणि, अवपाणि तथा उपरीपाणि। इन्हीं को सम ग्रह, अतीत ग्रह और अनागत ग्रह भी कहा है।

3.6.5.2 देशी ताल– पं० शारंगदेव जी द्वारा पुनः महादेव शिव की स्तुति करते हुए तथा प्रतिपाद्य देशीताल को प्रस्तुत किया है कि समृद्धि, यश और विजय से उत्पन्न आनन्द रूप तथा जो पार्वती जी के नेत्रों के उत्सव रूप है तथा जिसके सिर का आभूषण चन्द्रमा है। ऐसे महादेव शिव को नमस्कार करते हुए, देशीताल का अन्वेषण करता है। पं० शारंगदेव जी द्वारा देशी तालों के सामान्य लक्षण करते हुए उनके अनुकूल मार्गताल द्वारा देशी तालों के द्योतक है। यह भेद लघु आदि क्रिया और कास्यतालाधि इन दो क्रियाओं से होता है। लघु का मान लघु आदि से नापी गयी क्रियाओं से होता है और कास्यताल से जो ध्वनि

उत्पन्न होती है, उसके आधार पर ताल आधारित होता है। लघु आदि क्रियाओं के द्वारा देशी ताल का मान होता है। इसमें मार्ग तालों और देशी तालों का अन्तर किस प्रकार कहा सकते है। देशीतालों में कास्यंतालों की ध्वनि द्वारा क्रिया की जाती है और मार्गतालों में हाथ से ताली देकर क्रिया की जाती है। जो मान लघु का निश्चित किया जाता है, उसी के आधार पर गुरू, प्लुत तथा द्रुत का भी मान रखा जाता है, जिसमें लघु से आधी मात्रा द्रुत कही है और तीन मात्रा का प्लुत माना है। प्रस्तुत वर्णन पं० शारंगदेव जी द्वारा खण्ड़ भेदों में किया गया है।[(99)] इसमें प्रस्तार भेंद तथा क्रम भेद द्वारा देशी ताल बनते है। इसके पश्चात् पं० शारंगदेव जी ने देशी तालों की संख्या व उनके नाम कहे है, जो 120[(100)] है–

1. आदितालः	**2.** द्वितीय	**3.** तृतीय	**4.** चतुर्थ	**5.** पंचम
6. निःशंकलील	**7.** दपर्ण	**8.** सिंहविक्रम	**9.** रतिलील	**10.** सिंहलोक
11. कन्दर्प	**12.** वीरविक्रम	**13.** रंग	**14.** श्रीरंग	**15.** चच्चरी
16. प्रत्यंग	**17.** यति लग्न	**18.** गजलील	**19.** हंसलील	**20.** वर्ण भिन्न
21. त्रिभिन्न	**22.** राजचूडामणि	**23.** रंगद्योत	**24.** रंगप्रदीप	**25.** राजताल
26. वर्णताल	**27.** सिंहवक्रीडित	**28.** जयताल	**29.** वनमाली	**30.** हंसनाद
31. सिंहनाद	**32.** कुडक्क	**33.** तुरंगलील	**34.** शरभलील	**35.** सिंहनंदन
36. त्रिभगि	**37.** रंगभरण	**38.** मष्ठ	**39.** कोकिलाप्रिय	**40.** निःसारूक
41. राजविद्याधर	**42.** जयमंगल	**43.** मल्लिकामोद	**44.** विजयनंद	**45.** क्रीडा
46. जयश्री	**47.** मकरन्द	**48.** कीर्तिताल	**49.** श्रीकीर्ति	**50.** प्रतिताल
51. विजय	**52.** विन्दुमाली	**53.** सम	**54.** नंदन	**55.** मण्ठिका

(99) चौधरी सुभद्रा / पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / खण्ड़–3 / अध्याय–5 / श्लोक–237
(100) चौधरी सुभद्रा / पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / खण्ड़–3 / अध्याय–5 / श्लोक–240–255

56. दीपक	**57.** उदीक्षण	**58.** ढेंकी	**59.** विषम	**60.** वर्णमण्ठिका
61. अभिनन्द	**62.** अनंद	**63.** नान्दी	**64.** मल्ल	**65.** ककांल
66. कन्दुक	**67.** एकताली	**68.** कुमुद	**69.** चतुस्ताली	**70.** डोम्बुली
71. अमंग	**72.** रायवंकोल	**73.** वसन्त	**74.** लघुशेखर	**75.** प्रतापशेखर
76. झम्पा	**77.** श्राजझम्प	**78.** चतुर्मुख	**79.** मदन	**80.** पतिमण्ठ
81. पार्वतीलोचन	**82.** रति	**83.** लीला	**84.** करणयति	**85.** ललित
86. गारूगि	**87.** राजनारायण	**88.** लक्ष्मीश	**89.** ललितप्रिय	**90.** श्रीनंदन
91. जनक	**92.** वर्धन	**93.** राजवर्धन	**94.** षट्ताल	**95.** अन्तरक्रीडा
96. हंस	**97.** उत्सव	**98.** विलेकित	**99.** गज	**100.** वर्णयति
101. सिंह	**102.** करण	**103.** सरस	**104.** चण्डताल	**105.** चन्द्रकला
106. लय	**107.** स्कन्द	**108.** अड्डताली	**109.** घन्टा	**110.** द्वन्द
111. मुकुन्द	**112.** कुविन्द	**113.** कलध्वनि	**114.** गौरी	**115.** सरस्वती कण्ठाभरण
116. भग्न	**117.** राजभृगांक	**118.** राजमार्तण्ड	**119.** निःशंक	**120.** शारंगदेव

पं० शारंगदेव जी द्वारा मार्गीताल से देशीतालों की उत्पत्ति किस प्रकार होती है, इसे ही स्पष्ट किया है कि जिसमें चतुस्त्र और तिस्त्र आदि तालों भेदों की इकाइयों को विभाजित करके की जाती है अर्थात् मार्गताल के लघु इकाई की संख्या को बृद्धि तथा कम करके खण्डताल होता है। खण्डताल को कहते हुए ग्रन्थकारों ने वर्णन किया है कि जिन तालों में लघु आदि की संख्या ज्यादा हो उसे खण्डताल मानना चाहिए, खण्डन अर्थात् प्रस्तार है। एक लघु को कई तरह से प्रस्तारित किया जा सकता है, परन्तु यहाँ यह भी देखा जाना चाहिए कि द्रुत से छोटी इकाई देशीतालों में प्रयोग नहीं की जाती है। इसलिए पं०

शारंगदेव जी द्वारा अणुद्रुत इकाई का प्रयोग नहीं किया गया, इसको छोड़कर बाकी इकाइयों का प्रयोग कर प्रस्तार किया गया है।

ऽ, ।।, 0 0।, 0। 0, । 0 0, 0 0 0 0 आदि इस प्रकार लघु, गुरू इकाइयों को अधिक कर जो प्रस्तार खण्डत्व होता है, उसी से देशी तालों को निर्माण बताया गया है। इसके बाद पं० शारंगदेव जी ने द्रुत आदि इकाइयों की मात्रा का वर्णन किया है जिसमें द्रुत की अर्धमात्रा अर्थात् आधी मात्रा मानी है। लघु को हस्व जैसे छन्दशास्त्र में लघु को मात्रिक कहा है, जिसका मतलब एक मात्रा के बराबर, गुरू की द्विमात्रिक दो मात्रा के बराबर। मार्ग तालों में भी गुरू को यही संज्ञा दी है। छन्दों में गुरू को पर्यायवाची शब्द दीर्घ है जो चार संज्ञाएं है इसका चिन्ह ऽ है। सामवेद के अनुसार प्लुत इकाई का उच्चारण त्र्यंक होता है। इसके आगे पं० शारंगदेव जी ने इन इकाइयों के देवता का वर्णन करते हुए, द्रुत के देवता शंकर (शिव) को कहा है। लघु की देवी व गुरू के देवता गौरी युक्त शिव को माना है। पं० शांरगदेव जी द्वारा प्लुत के देवता भरतमुनि कि अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, महेश अर्थात् त्रिदेव को कहा है। तत्पश्चात् इन इकाइयों के चिन्ह का वर्णन कर द्रुत '0', गुरू 'ऽ', तथा प्लुत 'ऽ।' को कहा है।

इस प्रकार पं० शारंगदेव जी द्वारा संगीत रत्नाकर के पंचम अध्याय के अर्न्तगत तालगत वर्ण प्रस्तुत किया है, जिसमें मार्गी व देशी तालों का विस्तार से वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

3.5.6 वाद्याध्याय

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का मुख्य केन्द्र पं० शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर का वाद्याध्याय है, जिसमें वाद्यों सम्बन्धित समस्त लक्षणों को विस्तारपूर्वक ढ़ंग से व्याख्ति किया गया है। जिसे प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के चौथें अध्याय के अर्न्तगत बताया गया है। जिसमें वाद्य निरूपण, वाद्य लक्षण तथा वाद्य वर्गीकरण को वर्णित किया गया है, जिसमें चारों वाद्यों तत्, सुषिर, अवनद्ध तथा घन वाद्यों को उनके गुण–दोषों के साथ वर्णित किया गया है।[(101)]

(101) चौधरी सुभद्रा/पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/खण्ड़–3/अध्याय–6/श्लोक–1–1221

3.6.7 नृत्याध्याय

मध्यकालीन युग के लक्षण गन्थों में सबसे माननीय ग्रन्थ संगीत रत्नाकर है और इसके बाद के सभी शास्त्रकारों पर इसकी छाप स्पष्ट देखने का मिलती है। संगीत रत्नाकर में कुल सात अध्याय है। इसका अन्तिम अध्याय नृतन अध्याय है जिसके अर्न्तगत 1678 श्लोक है। इसके आरम्भ भी नाट्योत्पत्ति प्रकरण से होता है। उसके उपरान्त नाट्य, नृत, नृत्य का खूबसूरत, लक्षण व अभिनय विषमताओं का अल्प कथक कर ग्रन्थकार ने आंगिक अभिनय विषमताओं का विस्तारपूवर्क वर्णन आरम्भ कर दिया है। इसमें छः अंग हस्त, शिर, वक्ष, पार्श्व, कटि तथा पैर और छः प्रत्यंग ग्रीवा, बाहु, पृष्ठ उदर, उरू, जंघा, बारहर, उपांग–द्रष्टि, भ्रुपुट, तारा, कपोल, नासिका, अनिल, अधर, दशन, जिव्हा, चिबुक, वदन इसके अर्न्तगत हर एक अभिनय भेदों के अलग–अलग लक्षण–विनयोग कहे है। उसके उपरांत नृत–प्रकरण में भरत मुनि के अनुसार **108** करण, **36** उत्प्लुतिकरण, **32** अंगहार, रेचकलक्षण, **16** भैमीचारी, सोलह आकाशीकीचारी, **54** देशीचारी और कोहलोक्त, **26** मधुय संज्ञकचारी **6** प्रकार के पुरूष स्थानक और **7** प्रकार के स्त्री स्थानक, **23** देशी स्थानक, **9** उपविष्ट स्थानक, **6** सुप्तस्थानक, **10** तरह के भौममण्डल, **10** तरह के आकाशीक मण्डल, **10** लास्यंग, **6** घर्घर भेद, नट, नर्तक के लक्षण आदि नवरसों के लक्षणों तथा आदि विषयों का वर्णन दिया है।

पं० शारंगदेव जी द्वारा नर्तन का वर्णन करते हुए उसके तीन भेद नृत, नृत्य तथा नाट्य कहें है। नृत जिसमें विशेष रूप से लय–ताल के अनुरूप सिर्फ आंगिक क्रियाओं के माध्यम से उपांग, उत्साह, उल्लास को प्रकट करना होता है। नृत्य के सिर्फ भावों को प्रकट किया जाता है और नाट्य में रस की अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार पं० शारंगदेव जी द्वारा नृत, नृत्य और नाट्य इन तीनों को नृतन कहा है। नृत तथा नृत्य को दो प्रकार से कहा है– ताण्डव और लास्य। तण्डु गण के द्वारा लोक में अभिख्यात होने से ताण्डव कहा गया और पार्वती द्वारा लास्य नृत्य की सृष्टि हुयी।

नाट्योत्पत्ति प्रकरण के अर्न्तगत सर्वप्रथम लास्य नृत्य के आविर्भाव के सम्बन्ध में यह प्रमाणिकता इस ग्रन्थ में मिलती है कि पार्वती जी द्वारा लास्य नृत्य की सृष्टि हुयी। पार्वती जी ने इसकी ज्ञान बाणासुर की पुत्र उषा को दिया। उसके बाद उषा द्वारा इस नृत्य की

शिक्षा द्वारिका की गोपियों तथा सौराष्ट्र की रमणियों को मिली जिन्होनें इस नृत्य को लोक के रूप में प्रचलित किया।[(102)] इसके पश्चात् नाट्यशास्त्र का वर्णन किया, जिसमें ग्रन्थकरों ने कहा कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अर्थववेद से कुछ क्रम लेकर, कथा, अभिनव गीत तथा रसों को ब्रह्मा जी द्वारा लिया गया व एक अलग नाट्यवेद की रचना की गयी, जो नाट्यशास्त्र कहा गया तथा गीत की प्रधानधता की दृष्टि से गांधर्वव्रद भी कहा जाता है।[(103)] नृतन की महत्वता का वर्णन करते हुए, पं० शारंगदेव जी ने लौकिक सुख तथा फल देने वाला बतलाते हुए कहा है कि ब्रह्मानन्द से भी बढकर जो सर्वत्र माना जाता है तथा ब्रह्म के भेंट (मूलाकं) से जिस आनन्द की अनुभूति होती है, उससे भी आदिक इस नृतन द्वारा आनन्द प्राप्त होता है तथा इसको देखना चाहिए।[(104)] इस प्रकार पं० शारंगदेव जी द्वारा आगे नाट्य के प्रबन्ध में रस की चर्चा तथा चतुर्विध अभिनय–आंगिक, वाचिक, सात्विक तथा आहार्य की विशेषता का वर्णन किया है।

इन चार प्रकार के अभिनय का दो प्रकार के उचित कर्म कहे है। लोकधर्मी तथा नाट्यधर्मी जो अभिनय लोक रीति के अनुकूल किया जाए, वह लोक धर्मी तथा जो नाट्य की आवश्यकता के अनुकूल हो वह नाट्यधर्मी अभिनय है। आंगिक अभिनय के तीन प्रकार कहे है–शाखा, अंकुर और सूची। हाथ के द्वारा अलग–अलग प्रकार के रूचिकर व्यवहार (वर्तना) या क्रिया शाखा कही जाती है। अंकुर का वर्णन करते हुए कहा है कि भुतवाक्य अर्थात् बीते हुए वाक्य का अंवलबन से तत्पर होने वाले अंकुर कहा है तथा इसके अतिरिक्त जो वाक्य आगे कहे जाने है, उनके आश्रय हाथों की क्रिया सूची होती है। अध्याय के आरम्भ के जो 38 से 48 तक के श्लोक है, उनके अर्न्तगत जो विषय सूची कही है, उनके शरीर के अंगों का नियमित विभाजन अंग, प्रत्यंग और उपांग के रूप में किया है। अंग सात प्रकार के कहे है–सिर, हाथ, वक्ष, बाजू, कमर, पैर और कंधें।

प्रत्यंग के भी छः प्रकार गर्दन, भुजा, पीठ, पेट, जांघ व टांग तथा अन्य मत के अनुसार और तीन प्रकार कलाई (मणिबन्ध) घुटने और भूषण कहें है। उपांग के बारह प्रकार दृष्टि, भौंह, पलक, पुतलियां, गाल, नाक, वायु, निचले होठ, दांत, जीभ, ठोड़ी, तथा चेहरा। इसके

---

(102) शास्त्री एस० सुब्रह्मणम / पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / खण्ड़–4 / अध्याय–7 / श्लोक–1–8
(103) शास्त्री एस० सुब्रह्मणम / पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / खण्ड़–4 / अध्याय–7 / श्लोक–9
(104) शास्त्री एस० सुब्रह्मणम / पं0 शारंगदेव कृत संगीतरत्नाकर / खण्ड़–4 / अध्याय–7 / श्लोक–21–22

अतिरिक्त अंगों के उपांग भी कहें है। एडी (पाष्णि) टखनें तथा हाथ–पैरें की अंगुलियों और उनके तलुए। इस तरह से अंगों का विभाजन देखने सक यह स्पष्ट होता है कि निर्बन की क्रियाओं में शरीर के जिन–जिन अंगों द्वारा स्पष्टीकरण में विशिष्ट रूप से सहायक होती है। उस सभी को अंग में रखा जाता है और उसके अतिरिक्त कम प्रयोग होने वाले अंगों को प्रत्यंग में सम्मिलित किया गया है। अंगों में भी सिर (शिर्ष) सिर में केशों वाले भाग से लेकर गर्दन से ऊपर का भाग सबसे श्रेष्ठ संभ्रान्त होने से उसके सम्मिलित होने वाले अंगों को सिर के उपांग कहा गया है।**(105)**

अंगों के पश्चात् चेहरे के रंग (मुख रंग) हाथ का प्रचार और हाथ के करण तथा कर्म, क्षेत्र, शुद्ध और उत्प्लुतिकरण, अंगहारों का रोचकों के साथ वर्णन किया गया है साथ ही देशी चारी व शुद्ध चारी के साथ–साथ सीानक, वृत्ति का वर्णन करते हुए न्याय को भी प्रविचार सहित कहा है। श्रम, लास्यांग, मण्डल, रेखा नृर्तकी के लक्षण व गुण–दोषों को साज–सज्जा के साथ कहा है। साथ ही नृत्य के संग प्रयोग होने वाला गायन–वादन वृन्द के गुण–दोषों के साथ वर्णित किया गया है और उनकी गौण्डली विधि शुद्ध पद्धति, पेरणी नर्तक तथा उसकी पद्धति और आचार्य नट, नर्तक के लक्षण कोल्हाटिक, वैताललिक तथा चारण और सभासद समा का निवेश सभापति तथा आखिर में भाव व रस के लक्षण का वर्णन पं० शारंगदेव जी द्वारा प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।**(106)**

इस प्रकार पं० शारंगदेव जी द्वारा नृतनाध्याय के अर्न्तगत नृत, नृतन, नृत्त व नाट्य को विस्तार से व्याख्यित किया गया है।

निष्कर्ष– संगीत रत्नाकर जैसे वृहद ग्रन्थ को संक्षिप्त रूप में वर्णित करना अत्याधिक कठिन कार्य है, शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत अध्याय के अर्न्तगत संगीत रत्नाकर सम्बन्धित समस्त तथ्यों को वर्णित करने का प्रयास किया गया है, जिसमें संगीत रत्नाकर का स्थान तथा रचनाकाल की चर्चा को करते हुए, सम्बन्धित तथ्यों को वर्णित किया गया है। संगीत रत्नाकर ग्रन्थ की महत्वता को कहा है, क्योंकि संगीत रत्नकर संगीत जगत का सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस तथ्य को स्वीकार करते हुए, महत्वता की चर्चा की गयी है। संगीत

---

(105) शास्त्री एस० सुब्रह्मणम / पं0 शारंगदेव कृत संगीतरत्नाकर / खण्ड़–4 / अध्याय–7 / श्लोक–38–41
(106) शास्त्री एस० सुब्रह्मणम पं0 शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / खण्ड़–4 / अध्याय–7 / श्लोक–42–48

रत्नाकर ग्रन्थ की टीकाएं तथा संगीत रत्नाकर के संस्करणों को विस्तार से कहा है, जिसमें प्रकाशित संस्करण व प्राप्त टीकाओं को कहा है। संगीत रत्नाकर जैसे महान ग्रन्थ पर सर्वाधिक टीकाओं की रचना की गयी है, संगीत रत्नाकर ग्रन्थ का संक्षिप्तीकरण करते हुए सातों अध्यायों को शोधार्थी द्वारा अपनी सूझ–बूझ के अनुसार वर्णित करने का प्रयास किया गया है, जिसके अर्न्तगत स्वराध्याय, रागविवेकाध्याय, प्रबन्धाध्याय, प्रर्कीणाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय तथा नृत्याध्यायों को वर्णित करते हुए, सभी अध्यायों को उपाध्यायों में वर्गीकृत करते हुए, उन्हें संक्षिप्त रूप में कहने का प्रयास किया गया है। शोधार्थी द्वारा वाद्याध्याय को प्रस्तुत अध्याय के अर्न्तगत अधिक विस्तार से नहीं कहा गया है व वाद्याध्याय को प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के ही चौथें अध्याय के अर्न्तगत कहा गया है। ताल व नृत्य सम्बन्धित अध्याय को मात्र शोध प्रबन्ध के अर्न्तगत कार्य की आवश्यकता के अनुसार ही कहा गया है। शोधार्थी का मुख्य विषय वाद्याध्याय से सम्बन्धित है, जिस करण अन्य अध्यायों को अध्ययन के पश्चात् कार्य के अनुसार ही व्यक्त किया गया है।

****